राजकमल पेपरबैक्स

बादल सरकार

पगला घोड़ा / एवम् इन्द्रजित

पगला घोड़ा : एवम् इन्द्रजित्

बादल सरकार

जन्म : सन् 1925। जन्म-स्थान : कलकत्ता। इन्जीनियरिंग और टाउन प्लानिंग में शिक्षित-प्रशिक्षित। दो बार नौकरियाँ छोड़कर नाटक में ही पूरा समय दे चुके हैं, और अब कार्य-क्षेत्र पूरी तरह रंगमंच।

नाट्य-लेखक के रूप में विख्यात। नाटकों के मंचन **और** अभिनय में भी सक्रिय रुचि। 'शताब्दी' नाट्य संस्था के संस्थापक। सन् 1968 में संगीत नाटक अकादमी के श्रेष्ठ नाट्य-लेखन पुरस्कार से सम्मानित। सन् 1970 में नेहरू फेलोशिप की प्राप्ति, जिसके अन्तर्गत उन्होंने शहरी और ग्रामीण मंच से भिन्न एक तीसरे रंगमंच की तलाश पर काम किया। अमेरिका में शारीरिक अभिनय की दिशा में विशेष अध्ययन। 'अंगन मंच' के माध्यम से नाट्य क्षेत्र में अन्तरंग प्रस्तुति का प्रणयन। हिन्दी, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, कन्नड़ आदि अनेक भाषाओं में अधिसंख्य नाट्यकृतियों का अनुवाद और सफल मंचन।

प्रकाशित प्रमुख पुस्तकें : एवम् इन्द्रजित, पगला घोड़ा, बाकी इतिहास, बड़ी बुआजी, बल्लभपुर की रूपकथा, राम-श्याम-जदु, कवि कहानी, अबू हसन, सगीना महतो, स्पार्टाकस, विचित्रानुष्ठान, सारी रात (नाट्यकृतियाँ); 'द थर्ड थियेटर' तथा 'द चेंजिंग लैंग्वेज ऑफ थियेटर' आदि समीक्षात्मक कृतियाँ।

अनुवादिका

सुविख्यात रंगकर्मी प्रतिभा अग्रवाल का जन्म सन् 1930 में हुआ। विश्वविद्यालयी शिक्षा के नाते एम. ए., डी. फिल्.। अध्ययन, अध्यापन, अभिनय और अनुवाद में रुझान रुचि। अब तक अनेक नाटकों का निर्देशन और अनेकानेक में अभिनय कर चुकी हैं। 'गोदान' के मंचन में धनिया की भूमिका में अविस्मरणीय अभिनय। अब तक बांग्ला से बादल सरकार और धनंजय बैरागी के, गुजराती से शिवकुमार जोशी के तथा अंग्रेजी से इब्सन, आर्थर मिलर, पिरैंडेलो तथा सार्त्र के नाटकों को हिन्दी में अनूदित कर चुकी हैं। अमृतलाल नागर के बहुचर्चित उपन्यास 'सुहाग के नूपुर' का 'नगरवधू' शीर्षक से नाट्य-रूपान्तर भी किया है।

बादल सरकार

पगला घोड़ा
एवम् इन्द्रजित

राजकमल पेपरबैक्स

'पगला घोड़ा' का
पहला पुस्तकालय संस्करण 1974 में
और 'एवम् इन्द्रजित' का 1969 में
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. से प्रकाशित

© प्रतिभा अग्रवाल

राजकमल पेपरबैक्स में
पहला संस्करण : 1984
दूसरा संस्करण : 1989
© प्रतिभा अग्रवाल

राजकमल पेपरबैक्स : उत्कृष्ट साहित्य के जनसुलभ संस्करण

राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,
नई दिल्ली-110 002
द्वारा प्रकाशित

पाठ्य भाग गायत्री ऑफसेट प्रेस,
ए-66, सैक्टर-2, नौएडा, द्वारा
तथा आवरण मॉडर्न प्रिंटर्स,
दिल्ली-110 009, द्वारा मुद्रित

मूल्य : रु. 15.00

आवरणचित्र : दिल्ली की नाट्य संस्था
'अभियान' द्वारा प्रस्तुत 'पगला घोड़ा'
का एक दृश्य

PAGLA GHORA/EVAM INDRAJIT
Plays by Badal Sircar
Translated from the original Bengali by Pratibha Agrawal

पगला घोड़ा

बादल सरकार के मूल बांग्ला नाटक का
प्रतिभा अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत अनुवाद

प्राप्ति स्थान
दूरभाष : 2911154
दिल्ली-6

अनामिका-मंच-माला 3

प्रस्तुत नाटक के मचन, प्रसारण एवं अनुवाद के लिए अनुवादिका की अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।

'पगला घोड़ा' का प्रथम मंचन अभियान, दिल्ली, द्वारा, सितम्बर सन् 1969 में किया गया। निर्देशक थे श्री टी. पी. जैन और विभिन्न भूमिकाओं में थे सर्वश्री टी. पी. जैन (कार्तिक), श्याम अरोरा (शशि), अशोक सरीन (सातू), सुशील चोपड़ा (हिमाद्रि) और सुधा शिवपुरी (लड़की)। इसके बाद थियेटर यूनिट, बम्बई, और अनामिका, कलकत्ता, द्वारा इसके महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन हुए। 'पगला घोड़ा' का बंगला में प्रथम मंचन सन् 1971 में बहुरूपी के तत्वावधान में श्री शम्भू मित्र के निर्देशन में हुआ। नाटकों के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत इसे समस्त भारतीय भाषाओं में रेडियो से प्रसारित किया जा चुका है।

अनामिका, कलकत्ता, द्वारा इसका प्रथम मंचन मार्च सन् 1971 में हुआ, जिसमें सर्वश्री श्यामानन्दन जालान (सातू), आदित्य विक्रम (कार्तिक), विमल लाठ (शशि), शिवकुमार झुनझुनवाला (हिमाद्रि) और यामा अग्रवाल (लड़की) ने अभिनय किया। बाद में अमर गुप्ता (कार्तिक), रवि दवे (शशि), मोतीशंकर पंचोली (सातू) और वीणा दीक्षित (लड़की) ने भी अभिनय किया। मंचसज्जा श्री खालिद चौधरी, आलोक श्री तापस सेन और निर्देशन श्री श्यामानन्दन जालान का था।

पगला घोड़ा : अनुवादक की दृष्टि में

गाँव का निर्जन श्मशान, कुत्ते के रोने की आवाज, धू-धू करती चिता और शव को जलाने के लिए आये चार व्यक्ति—इन्हें लेकर नाटक का प्रारम्भ होता है। हठात् एक पाँचवाँ व्यक्ति भी उपस्थित हो जाता है—जलती हुई चिता से उठकर आयी लड़की जो किसी का प्रेम न पाने की व्यथा को सहने में असमर्थ होकर आत्महत्या कर लेती है और जिसके शव को जलाने के लिए मुहल्ले के ये चार व्यक्ति उदारतापूर्वक राजी हो जाते हैं। अवश्य ही 'विलायती' का लोभ भी था। आत्महत्या करनेवाली लड़की के जीवन की घटनाओं की चर्चा करते हुए एक-एक करके चारों अपने अतीत की घटनाओं की ओर उन्मुख होते हैं, उन लड़कियों के, उन घटनाओं के बारे में सोचने को बाध्य होते हैं जो उनके जीवन में आयी थीं और जिनका दुखद अवसान उनके ही अन्याय अविचार के कारण हुआ था। आमतौर पर 'श्मशान-वैराग्य' की चर्चा सुनी जाती है किन्तु पगला घोड़ा के चारों पात्र श्मशान में बैठकर अपनी प्रेम-कहानियों को दुहराते हैं, उन सुखद-दुखद क्षणों में खो जाते हैं जो भले ही उनके जीवन का निर्णायक मोड़ न रहे हों पर उन लड़कियों के जीवन का निर्णायक मोड़ अवश्य थे जो उन घटनाओं के बाद हताश-निराश हो आत्महत्या करती या मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

किन्तु 'पगला घोड़ा' में नाटककार का उद्देश्य न तो श्मशान की बीभत्सता के चित्रण द्वारा बीभत्स-रस की सृष्टि करना है और न ही अपराध-बोध का चित्रण। बादल बाबू के शब्दों में यह एक 'मिष्टि प्रेमेर गल्प' अर्थात् 'मधुर प्रेम-कहानी' है। जलती चिता से उठकर आयी लड़की अपने अशरीरी अस्तित्व को छोड़ मूर्त हो उठती है और न केवल स्वयं उपस्थित होती है वरन् उन चारों को कुरेद-कुरेदकर उन्हें उन क्षणों को पुन: जीने के लिए प्रेरित करती है जो उनके प्रेम-प्रसंगों में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। अन्त में गिलास में मिलाये हुए विष को गिराते हुए कार्तिक का यह कथन

कि "जीवित रहने से सबकुछ सम्भव हो सकता है" नाटककार की जीवन के प्रति आस्था को पुष्ट करता है।

नाट्य-शिल्प की दृष्टि से 'पगला घोड़ा' एक विशिष्ट कृति है। मृत लड़की निरन्तर मंच पर उपस्थित रहती है और जीवित व्यक्तियों को अपने अन्तर में झाँकने को इस तरह प्रेरित करती है कि वह मृत होते हुए भी सजीव हो उठती है, उसकी उपस्थिति सारी घटनाओं एवं वातावरण को प्रेम की सुगन्ध से भर देती है। वास्तविक और अवास्तविक, वर्तमान और अतीत, निस्संगता और सहज प्रेम, इस तरह एक-दूसरे में घुल-मिल गये हैं कि इनमें परस्पर विरोध नहीं प्रतीत होता, ये विभिन्न पात्रों और घटनाओं के दो पहलू प्रतीत होते हैं। श्मशान और मृत्यु की बीभत्सता को प्रेम की मधुरता में रूपान्तरित करने का कार्य बादल बाबू जैसे समर्थ लेखक द्वारा ही सम्भव था। बादल बाबू ने चारों लड़कियों मालती, मिलि, लछमी और लड़की का अभिनय एक ही लड़की के द्वारा किये जाने की परिकल्पना की है। ऐसा करने के पीछे उद्देश्य नारी की उस स्थिति को और गहरा बनाना था जिसमें वह किसी-न-किसी कारण से अपने प्रिय के द्वारा ठुकरायी जाती है—शशि के भाई का खयाल करके मालती को न स्वीकार करना, हिमाद्रि का अपने अनुरूप न ढाल पाने के कारण मिलि का त्याग करना और समाज के डर के कारण सातू का लछमी को त्याग देना सब एक ही परिणाम तक पहुँचाते हैं। नाटक की दृष्टि से 'पगला घोड़ा' में ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं जो अन्तर को झकझोरती हैं, जिनका चित्रण बड़ी गहराई और सूक्ष्मता से किया जा सकता है।

अब तक, 'पगला घोड़ा' को भारतवर्ष के चार सफल निर्देशकों के हाथों मंच पर रूपायित होने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। बँगला में शम्भु मित्र (बहुरूपी, कलकत्ता) और हिन्दी में श्यामानन्द जालान (अनामिका, कलकत्ता), सत्यदेव दुबे (थियेटर यूनिट, बम्बई), और टी. पी. जैन (अभियान, दिल्ली) ने इसे प्रस्तुत किया। बंगला प्रस्तुति हिन्दी प्रस्तुतियों से दो मानों में भिन्न थी—एक तो यह कि उसमें चारों लड़कियों का अभिनय अलग-अलग कलाकारों ने किया था और दूसरा यह कि उसमें प्रेम के शारीरिक पक्ष को मंच-सज्जा, भाव-भंगिमा एवं कुछेक पंक्तियाँ जोड़कर उभारा गया था। अपने-आपमें ये चारों प्रस्तुतियाँ बहुत सफल रहीं। अन्यान्य शहरों में भी इसका मंचन किया जा चुका है। आकाशवाणी के नाटकों के राष्ट्रीय कार्यक्रम में इसका समस्त भाषाओं में प्रसारण भी हो चुका है।

अनुवाद के सम्बन्ध में विशेष कुछ नहीं कहना है सिवाय इसके कि

नाटक के वातावरण एवं बातचीत को जबरदस्ती हिन्दी-क्षेत्र के अनुरूप बनाने का प्रयत्न नहीं किया गया है। कुछेक अभिव्यक्तियों को (जैसे तारा माँ, श्मशान-काली का प्रसाद, श्मशान-गोष्ठी) हिन्दी-क्षेत्र में प्रचलित न होने पर भी ग्रहण किया गया है क्योंकि उनका रूपान्तर सम्भव नहीं और उनके बदले में सर्वथा कुछ भिन्न अभिव्यक्ति रखने से अनेक उलझनें पैदा हो सकती थीं। शाम के झुटपुटे की रोशनी के लिए बंगला में 'कने देखा आलो' कहकर जिस कोमल और मधुर वातावरण की सृष्टि की जाती है, उसका भी हिन्दी में अभाव है। ऐसे स्थलों पर बंगला का असर यदि बना रह गया है तो अज्ञानवश नहीं वरन् सर्वथा उपयुक्त होने के कारण और इस कारण भी कि उनको बदलना सम्भव नहीं।

एक और बात—पगला घोड़ा को लेकर बंगला में एक शिशु-कविता है जिससे हर बंगाली परिचित है। बादल बाबू ने उस कविता का उपयोग इस नाटक में (और इसके नामकरण में) किया है। यद्यपि बादल बाबू पगला घोड़ा को अपने-आपमें विशेष महत्त्व नहीं देना चाहते थे तथापि जाने-अनजाने वह इस नाटक में प्रेम का प्रतीक हो उठा है, लड़की बार-बार उस पगला घोड़ा से उसके पास न आने की शिकायत करती है। हिन्दी-क्षेत्र में यह 'पगला घोड़ा' एक रहस्यमय प्राणी हो गया है, दर्शक बराबर इस प्रतीक के सम्बन्ध में जिज्ञासाएँ व्यक्त करते रहे हैं।

मेरी इच्छा थी कि प्रकाशन के समय हिन्दी के सभी निर्देशकों का वक्तव्य दिया जाय ताकि उन्होंने नाटक में क्या पाया और उसे किस दृष्टि से रूपायित किया, इसका परिचय प्राप्त हो सके। खेद है कि अनेक चेष्टाओं के बावजूद केवल श्यामानन्द जालान का वक्तव्य प्राप्त हो सका, अतः वही पुस्तक के साथ जा रहा है। उनका वक्तव्य रोचक होगा, इसका विश्वास है।

पगला घोड़ा : निर्देशक की दृष्टि में

जब बादल बाबू से पहली बार नाटक सुना था तो लगा था उनके सारे दर्शन, ज्ञान और अनुभूतियों के पीछे एक गहरी रूमानियत है और वह रूमानियत सबसे ज्यादा उभरी है इस नाटक में। नाटक सुनाकर शायद बादल बाबू ने स्वयं ही कहा था कि यह नाटक एक मीठी प्रेम-कहानी है—'मिष्टि प्रेमेर गल्प'।

शुरू-शुरू में बड़ी दिक्कत हुई थी नाटक की परिकल्पना में। एक गाँव का श्मशान, आधी रात, बगल में चिता पर धू-धू जलता एक शव, कुत्ते के रोने की आवाज—ये सब एक ओर इशारा करते थे। पर साथ ही चिता पर लेटी जवान लड़की जो अतृप्त मन लिये आत्महत्या कर लेती है, शराब, प्रेम-कहानियाँ, चिता पर से उस लड़की का उठकर आना, अर्थी ढोकर लानेवाले चारों आदमियों को छेड़ना, उनके बीच इठलाना—ये सब दूसरी तरफ ध्यान ले जाते थे।

पर अन्त में मुझे भी लगा कि बादल दा का कहना ही ठीक है। नाटक वास्तव में प्रेम-कहानी है—एक नहीं चार। और मैंने अपने प्रस्तुतीकरण में नाटक के उसी पक्ष पर जोर दिया। श्मशान के बीभत्स संकेतों को बिल्कुल दबाकर मैंने रूमानियत को ही उभारा, प्यार की रूमानियत, विरह की असह्य यन्त्रणा की रूमानियत।

दृश्य बन्ध, आलोक, अभिनय सभी में नाटक की मूलभूत रूमानियत को व्यक्त करने का हमारा प्रयास था।

यों बादल बाबू के कई नाटकों में उनका एक विश्वास बार-बार उभर-कर आता है : जीवन पर विश्वास। वे स्वयं कर्मठ व्यक्ति हैं और इसी में विश्वास करते हैं कि हमें एक जीवन मिला है। हमारे पीछे भी एक धुन्ध है, सामने भी! हमें बस चलना है, जीते जाना है। दुःख भी हैं, सुख भी हैं। निराशा के गहन अन्धकार में भी आशा है। मृत्यु को खोजना निरर्थक है। वह जीवन के अस्तित्व को ही नकारना है।

इस नाटक के बारे में और क्या लिखूँ। और क्या है इसमें जो इसको पढ़कर ही स्पष्ट नहीं हो जाता।

एक बहुत बड़ा आकर्षण इस नाटक में और है–मेरे लिए, आपके लिए, अभिनेताओं के लिए। कहीं यह हम सबको बड़ा अपना लगता है। नाटक के पाँचों पात्रों में हम अपने-आपको किसी-न-किसी रूप में पाते हैं। नाटक की लड़की का प्यार खोजना, उसके लिए तड़पना, भटकना, आज के इस युग के वैयक्तिक अकेलेपन का तीव्र अहसास है—जो हम बार-बार महसूस करते हैं। कोई अपना नहीं। अपने भी अपने नहीं। हम सब कटे-कटे, अकेले। आकाश की सीमाहीनता मे भटकती उल्काएँ। और जो कहीं कुछ अपना मिलने की आशा होती है वहाँ हम उसे आगे बढ़कर ले नहीं पाते। हमारी कायरता, हमारी अकर्मण्यता और नपुंसकता हमारे सामने दीवार खड़ी कर देती है। और हम फिर दूसरी ओर बढ जाते हैं। भटकने, खोजने—उसे जिसे हम खो चुके हैं, तडपने—उसके लिए जो हमें प्राप्त था, पर जिसे हमने स्वयं खो दिया।

अपने प्रस्तुतीकरण में मैंने इसी पक्ष पर जोर दिया था। अपनी कायरता के कारण, अपनी कमजोरी के कारण अपने पर और किसी और पर जो अत्याचार अजाने हुआ उसके लिए पश्चात्ताप मैंने उभारना चाहा। जहाँ भी मौका मिला, उसी पर जोर दिया। हिमाद्रि, सातू, कार्तिक, शशि सभी उसी में जलते हैं और एक जवान लड़की की चिता, उससे उठती भभक, शराब की उन्मुक्तता, उनके अन्तर की वेदना को उभारकर सामने ले आती है—दैनन्दिन जीवन के संयम को तोड़कर। और बार-बार मैंने चारों पुरुष-चरित्रों के पश्चात्ताप और उनकी वेदना को अतिरंजित करके दर्शकों को उन चरित्रों के मानसिक और भावात्मक द्वन्द्व का परिचय देना चाहा। यह प्रयास भी था कि चरित्रों का तड़पना कुछ इस तरह हो, इस हद तक हो कि कहीं वह दर्शकों को कुरेदे, कोंचे और दर्शक अपने-अपने जीवन की समानान्तर घटनाओं के बारे में सोचने को बाध्य हों।

प्रस्तुतीकरण में हमने पुरुष-चरित्रों और उस चिता पर जलती लड़की की आत्मा को अलग-अलग स्तरों पर नहीं रखा था। वह एक साधारण व्यक्ति की तरह मंच पर आती थी। पुरुष-चरित्रों के पास मँडराती थी, उन्हें छेड़ती थी। हमने विभिन्न नारी-चरित्रों का अभिनय भी केवल एक ही अभिनेत्री से कराया था, जो बार-बार विभिन्न चरित्रों में, विभिन्न नामों में, मंच पर आती है। ऐसा करने का मुख्य कारण था—सभी स्त्री-चरित्रों की स्थिति की मूलभूत समानता।

हमारा प्रयास यही था कि हम नाटक के मूल कथ्य को जितना सीधा हो सके, दर्शकों के सामने रखें—ऐसे रूप में, इस तरह से कि दर्शक उसे ग्रहण कर सके, उसे अनुभव कर सके।

श्यामानन्द जालान

दृश्य-बन्ध

पूरे नाटक में केवल एक दृश्य-बन्ध है—श्मशान के पास एक कोठरी जिसमें मुर्दा जलानेवाले रुकते हैं। इसकी परिकल्पना इच्छानुसार की जा सकती है। एक चौकी, एक चटाई, एक मिट्टी का घड़ा, एक छोटी चौकी, लकड़ियों का गट्ठर, एक पेड़, आदि वातावरण बनाने के लिए अपेक्षित।

इस्तेमाल में आनेवाली वस्तुएँ

एक झोला, ह्विस्की की दो बोतलें, चार गिलास, एक जोड़ी ताश, एक पुड़िया जिसमें पाउडर हो।

पात्र

एक महिला (20-25 वर्ष) एवं चार पुरुष।

प्रथम अंक

कस्बे के बाहर एक श्मशान। शव-यात्रा में आये लोगों के बैठने के लिए एक कोठरी जो मंच का आधा हिस्सा घेरे है। कोठरी में एक बड़ी चौकी। दो नीचे स्टूल। एक कोने में कसोरे से ढँका पानी का घड़ा। पीछे बायीं ओर दरवाजा, उसके बगल में खिड़की, उसके बाद दीवार घूमकर सामने की ओर आ गयी है, मकान की सीमा निर्धारित करती हुई। दाहिनी ओर की जगह मानो कमरे के बाहर है। रात। कमरे में पेट्रोमैक्स जल रहा है। खुली खिड़की। दरवाजे के पीछे दूर कहीं आग जलने का आभास मिल रहा है, लाल रोशनी रह-रहकर नाच उठती है। घर के बाहर का हिस्सा। पीछे की ओर एकदम अँधेरा है। पर्दा खुलने पर कोठरी में चार आदमी बैठे ट्वेण्टी नाइन खेल रहे हैं, दो चौकी पर बैठे हैं, दो स्टूल पर। एक हाथ खेल होने के बाद बातचीत शुरू होती है।

सातू : डिक्लेयर।

कार्तिक : चिड़ी। अरे वाह, डबल की बाजी है, याद है न ?

सातू : अठारह बोले हो।

हिमाद्रि : ई···श···शशि दा।

कार्तिक : ये रहा।

सातू : बस, रंग खलास ! किस बूते पर चिड़ी रंग लगाया था, एँ ? (बाजी खत्म होती है। कार्तिक गिनता है।)

कार्तिक : एक···एक···दो···तीन···छ···छ दो आठ···दस···बारह···तेरह।

सातू : दो काला···खोलिए शशि बाबू।

कार्तिक : पाँच काला हो गया सातू बाबू। बस एक और खुल जाये तो इन लोगों की काली झण्डी तैयार।

शशि : एक बार ज़रा देख आया जाता···

हिमाद्रि : मैं जाता हूँ।
शशि : नहीं, तुम्हीं बार-बार क्यों जाओ। इस बार मैं जाऊँगा।
हिमाद्रि : तो क्या हुआ ? आप बैठिए··· (**हिमाद्रि का प्रस्थान।**)
शशि : अरे, अभी उम्र कम है, हम लोगों से कितना छोटा है। दो बार चला ही गया तो क्या हुआ ? हम लोग भी···जब उसकी उम्र के थे न, तो इसी तरह···
सातू : कार्तिक बाबू तो ऐसी बातें कर रहे हैं जैसे इनकी न जाने कितनी उम्र हो गयी हो ! अब तक कितने बसन्त पार किये हैं आपने, सुनूँ तो जरा।
कार्तिक : बहुत सारे।
सातू : फिर भी कितने ? पचास ?
कार्तिक : पचास ?
सातू : अच्छा बाबा, पचास नहीं तो पचपन, और क्या ?
कार्तिक : पचपन ?···
सातू : माने, और ज्यादा ?
कार्तिक : जी हाँ। (**हँसकर**) नहीं, अभी पिछले फागुन में उनचास पूरा किया है।
सातू : (**जोर से हँसकर**) वाह कार्तिक बाबू, वाह ! बसन्त पार किये उनचास और गुमान इतना ? मैं दो साल पहले उनचास पार कर चुका हूँ।
शशि : मतलब, आप फिफ्टीवन हैं ?
सातू : येस सर फिफ्टीवन। हाफ सेनचुरी प्लस वन।
शशि : इमपासिबल।
कार्तिक : आप मुझसे बड़े हैं ?
सातू : लगता तो ऐसा ही है।
शशि : (**कार्तिक से**) सातू बाबू को देखकर कोई कह सकता है कि ये एक्यावन साल के हैं ?
कार्तिक : मुझे तो विश्वास ही नहीं हो रहा है।
सातू : कसम से, मैं सच कह रहा हूँ।
शशि : मैं तो मानता था कि कार्तिक बाबू आपसे ज्यादा नहीं तो दस साल तो बड़े होंगे ही।
सातू : (**जोर से हसकर**) अरे नहीं शशि बाबू। रात-दिन कुत्तियों से माथा मारते ही बीत जाता है। सर्दी-गर्मी, रात-दिन कब आते हैं कब चले जाते हैं, पता ही नहीं लगता। बुड्ढे होने का समय कहाँ मिला ?
कार्तिक : वाह ! वाह ! सातू बाबू ! क्या बात कही है ! लोगों को जैसे मरने

की फुरसत नहीं मिलती वैसे ही सातू बाबू को बुड्ढे होने की फुरसत नहीं मिली।

शशि : सच सातू बाबू, आपको देखकर मन करता है कि पोस्टमास्टरी छोड़-कर ठीकेदारी शुरू कर दूँ।

सातू : शशि बाबू, ऐसी सुख की जिन्दगी छोड़कर आपको इस झखमारी का शौक चर्राया ?

शशि : अरे, झखमारी तो हर कहीं है। अब देखिए न, हम लोग यहीं पड़े सड़ रहे हैं और कुछ नहीं तो आप इस बीच न जाने कहाँ-कहाँ घूम चुके हैं, न जाने कितना कुछ देख चुके हैं। भाई, आप लोगों की लाइफ इण्ट-रेस्टिंग है।

कार्तिक : मुझे इण्टरेस्टिंग लाइफ का शौक नहीं है। मैं जैसे हूँ, वैसे ही सुखी हूँ।

शशि : जी हाँ, बड़े सुखी हैं। दवा का ठीक माप करते-करते आँखों के बारह बज गये हैं और कमरे के एक कोने में दिन-भर स्टूल पर बैठे-बैठे सारे जोड़ों को गठिया ने जकड़ लिया है···

कार्तिक : अरे भाई, कमरे के एक कोने में बैठे-बैठे ही कार्तिक कम्पाउण्डर ने बहुत दुनिया देखी है। वह भी कम इण्टरेस्टिंग नहीं। सभी को घूम-फिरकर दवाखाने में हाजिरी देने आना ही पड़ता है। ठीक वैसे ही जैसे सबको एक न एक दिन यहाँ आना पड़ता है।

शशि : हाँ, आप ही लोग तो यहाँ के सिंहद्वार हैं··· **(सातू का अट्टहास !)**

कार्तिक : हाँ, और ऐसा सिंहद्वार जहाँ आप सब आते हैं और हँसी-खुशी दक्षिणा भी दे जाते हैं।

सातू : बिल्कुल सही बात कह रहे हैं, कार्तिक बाबू—बावन तोले पाव रत्ती सही। पर मैं पिछली बार कब आपके सिंहद्वार पर गया था, याद ही नहीं पड़ता। ऐसा मजबूत शरीर पाया है कि बीमारी भीतर घुस ही नहीं पाती···

कार्तिक : अहा-हा···क्या कहे जा रहे हैं ? ऐसे नहीं कहते, कौन जाने···

सातू : **(अट्टहास)** ऐसे कहते नहीं, ऐसे करते नहीं, ऐसे देखते नहीं, ऐसे सुनते नहीं, ऐसे खाते नहीं, ऐसे पीते नहीं, यह सुनते-सुनते कान पक गये कार्तिक बाबू। जब से होश सँभाला, तब से यही सुनता आ रहा हूँ। पर दुनिया में ऐसा कोई भी काम नहीं है जो मैंने न किया हो, ऐसा कुछ भी नहीं है जो मैंने न देखा-जाना हो। फिर भी मजे में तो हूँ। कुछ तो नहीं हुआ।

कार्तिक : लीजिए, पीने की बात से याद आयी। सातू बाबू, वो निकालेंगे

नहीं ?

सातू : अरे हां ! (उठता है) मैं तो भूल ही गया था।

शशि : हिमाद्रि के सामने...

कार्तिक : अहा, हिमाद्रि तो जैसे मिट्टी का माधो है।

शशि : नहीं—पर अभी बच्चा है।

कार्तिक : बच्चा ? ? तीस के आस पास पहुँचा होगा और आप उसे बच्चा-बच्चा कह रहे हैं !

शशि : स्कूल टीचर लोग जिन्दगी-भर बच्चा ही रह जाते हैं। फिर हिमाद्रि को तो आदर्श-वादर्श का रोग भी लगा रहता है न !

सातू : (हँस पड़ता है) आदर्श...आदर्श...

शशि : हँसिए मत सातू बाबू। आदर्श बड़े काम की चीज होती है। मैं भी अपने पास एकाध रख पाता तो...

कार्तिक : तो रखा क्यों नहीं ? किसी ने मना किया था ?

शशि : रखना इतना आसान होता है क्या ? धन-दौलत की तरह इसे भी जमा करके रखना बड़ा मुश्किल होता है।

सातू : क्यों, हिमाद्रि बाबू ने कैसे रखा है ?

शशि : हिमाद्रि ने सचमुच रखा है या नहीं, भगवान ही जाने। जबानी जमा-खर्च तो बहुतेरे किया करते हैं।

कार्तिक : हटाइए भी ! सातू बाबू, निकालिए न...बहुत बकबक कर चुके हम लोग। (सातू उठकर कमरे के कोने में रखे बैग में से ह्विस्की की बोतल और चार गिलास निकालकर लाता है।) वाह वा—विलायती है। कितने दिनों से देखने तक को नसीब नहीं हुई है।

शशि : चार गिलासों का क्या कीजियेगा ? क्या सोच रखा है कि हिमाद्रि भी पीयेगा ?

सातू : अँह, इतना हिसाब कौन लगाता है। चार आदमी थे सो चार गिलास ले आया।

कार्तिक : अच्छा किया। कहा नहीं जा सकता। हिमाद्रि को यदि यह विश्वास दिला दें कि हम लोग किसी से इसकी चर्चा न करेंगे तो हो सकता है उसका आदर्श डगमगा भी जाये।

शशि : हाँ न। एक भले आदमी को बिगाड़े बिना आप लोगों को चैन नहीं मिल रहा है ?

कार्तिक : बिगाड़ने की किसे गरज पड़ी है बाबा ! उससे तो अपना ही घाटा होगा। इसमें से हिस्सा बँट जायेगा।

सातू : हिस्सा बँटने की चिन्ता मत कीजिए कार्तिक बाबू। (बैग से एक और

बोतल निकालकर दिखलाता है।)

कार्तिक : यह क्या ? आप एक बोतल और लाये हैं ? अपनी गाँठ से पैसा खर्च करके···

शशि : हाँ···

सातू : (अट्टहास) पैसा क्या गाँठ में रखने के लिए है शशि बाबू ? आपने ही अभी कहा न कि पैसा रखा ही नहीं जा सकता।

शशि : नहीं···पर मलिक बाबू ने जब दिया ही था तब···

सातू : सच पूछिए तो मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मलिक बाबू ने आखिर बोतल दी क्यों ?

कार्तिक : देते न तो क्या करते ?··ऐसे ही क्या कोई इस डरावनी रात में यहाँ आता ? वाह···मजाक है क्या ?

सातू : न आता तो न सही, उससे मलिक का क्या बनता-बिगड़ता था ?

शशि और कार्तिक की हँसी।

कार्तिक : आप अभी यहाँ नये-नये आये हैं, दिन-भर इधर-उधर घूमते रहते हैं। आप कैसे कुछ जानेंगे।

सातू : मतलब ? कोई बात है क्या ?

कार्तिक : हाँ, सो क्यों नहीं है। कुछ है सातू बाबू, कुछ है। मलिक बाबू का अपना स्वार्थ था इसीलिए उन्होंने···

सातू : स्वार्थ ?

शशि : आप उस लड़की को जानते थे ?

सातू : ना। मैंने तो पहली बार देखा।

शशि : लड़की कौन थी, उसका क्या किस्सा है, यह सब भी न जानते होंगे ?

सातू : ना। मैं कहाँ से जानूँगा ?

कार्तिक : आपको जब किसी से कुछ मतलब ही नहीं था तो फिर इतनी रात को निकले क्यों ?

सातू : वाह, निकलता न कैसे। खबर मिली तो···फिर आप सब आ रहे थे···

कार्तिक : अरे साहब, मुझे तो विलायती का नशा खींच लाया। और आप— आप खुद गाँठ का पैसा खर्च करके एक और बोतल लेकर···

शशि : सच, आप सारे दिन धूप मे इधर-उधर घूमते हैं, मेहनत करते हैं। आपको इस समय बुलाकर मैंने भूल की।

सातू : शशि बाबू आप भी···

कार्तिक : बुलाते न तो क्या करते शशि बाबू ?

शशि : हाँ, सो भी ठीक ही है। इतनी रात को यहाँ आने को राज़ी ही कौन होता। फिर इस लड़की के लिए···

सातू : इस लड़की के लिए···माने···यह लड़की कौन है···

अचानक अन्धकार भेदकर लड़की की हँसी सुनायी पड़ती है। कमरे के बाहर का अँधेरा हिस्सा आलोकित हो उठता है। लड़की के बाल खुले हैं, आँचल कमर में बँधा है। वह हँसे ही जा रही है। कमरे की रोशनी बुझ गयी है, तीनों छाया-जैसे दिख रहे हैं। वे तीनों स्थिर हैं—उनमें से किसी ने लड़की की हँसी नहीं सुनी है।

लड़की : (हँसते-हँसते) मैं कौन हूँ ? मैं क्या हूँ ? मेरा किस्सा क्या है ? तुम लोग नहीं जानते ? तुम लोग कोई नहीं जानते ? मैं कौन हूँ ? मैं क्या हूँ ? मेरा किस्सा क्या है ?

रोशनी कम होकर एकदम अँधेरा हो जाता है। लड़की का चेहरा, उसकी हँसी अन्धकार में विलीन हो जाती है। कमरे में प्रकाश होता है। ऐसा लगता है जैसे बातचीत में कोई व्यवधान ही न पड़ा हो।

सातू : मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है। यह लड़की···

कार्तिक : लड़की का बहुत बड़ा किस्सा है सातू बाबू—बहुत बड़ा।

शशि : मुझे तो लड़की का कोई भी दोष नहीं लगता।

कार्तिक : लड़की का एकमात्र दोष यह था कि वह लड़की थी।

शशि : हाँ···आप ठीक कहते हैं···

सातू : आप लोग तो इस किस्से को और भी पेचीदा बनाये जा रहे हैं। लगता है जैसे इसके पीछे कोई रहस्य है···

कमरे में फिर अँधेरा। बाहर लड़की पर रोशनी।

लड़की : किसकी जिन्दगी में रहस्य नहीं है ? और किस्सा ? किसकी जिन्दगी में किस्सा नहीं है ? तुम ? तुम लोग ? तुम लोगों का कोई किस्सा नहीं है ? कोई रहस्य नहीं है ? सब कह डालो न। कहकर जी हलका कर डालो। देखोगे कि तुम सबका किस्सा एक जैसा ही है—सबका एक जैसा किस्सा मिलकर एकरूप हो जायेगा।

खिलखिलाकर हँस पड़ती है। रोशनी कम होने लगती है।

तुम लोगों का···हम लोगों का···सब किस्सा···मिलकर एकरूप हो···

स्वर विलीन हो जाता है। कमरे में प्रकाश।

शशि : किस्सा···हाँ सो क्यों नहीं है।

कार्तिक : कोई बात हुए बिना मलिक बाबू यों ही विलायती बोतल देते? वैसे, शशि बाबू बोतल के लिए नहीं आये, यह सही है। हिमाद्रि की तो बात ही छोड़िए।

शशि : देखिए कार्तिक बाबू, मेरा भी कुछ स्वार्थ था तभी आया, यूँ ही नहीं। मेरे पास न तो हिमाद्रि की तरह आदर्श है और न सातू बाबू की तरह···

सातू : वाह, मैं तो आप लोगों की कम्पनी की खातिर आया हूँ। यह स्वार्थ नहीं है?

शशि : स्वार्थ तो है पर ऊँचे दर्जे का। मेरा स्वार्थ बहुत सीधा-सादा, साधारण-सा है। मलिक बाबू को राज़ी रखने से ट्रांसफर के झमेले से छुट्टी मिल सकती है। पोस्ट ऑफिस के बड़े अफसरों से उनकी खूब रब्त-जब्त है।

सातू : आप लोग तो इस तरह कह रहे हैं जैसे अपने-अपने स्वार्थ के लिए ही आये हों। स्वार्थ न होता तो ऐसे ही न आते।

कार्तिक : ऐसे ही? हँह···यह बाह्मन का बेटा तो हरगिज न आता।

सातू : आपके कहने का मतलब कि यदि कोई लड़की इस तरह मर जाती··· ऐसी लड़की जिसका बाप के सिवाय और कोई न हो, और वह भी लकवा का शिकार होकर खाट पकड़े हो तो···

शशि : सातू बाबू···क्या हिमाद्रि की तरह आप पर भी आदर्श का भूत सवार हो रहा है?··· (सातू हँस पड़ता है। हिमाद्रि का प्रवेश।) सब ठीक है···?

हिमाद्रि : हाँ, अब कुछ देर आराम से निश्चिन्त हुआ जा सकता है।

शशि : बैठो—बैठो।

बैठने के लिए बढ़ने पर बोतल-गिलास देखकर हिमाद्रि ठिठक जाता है। फिर बैठता है। कार्तिक शशि की ओर देखकर ज़रा-सा मुसकुरा देता है।

कार्तिक : क्या सातू बाबू, उसे खोलिएगा नहीं?

सातू : हाँ···हाँ, क्यों नहीं? (**बोतल खोलकर गिलास में ढालता है।**) हिमाद्रि बाबू, बुरा मत मानिएगा। सुना, आपको यह सब नहीं चलता···

हिमाद्रि : नहीं···नहीं···बुरा मानने की क्या बात है? मेरी···मेरी चिन्ता

बिल्कुल मत कीजिए···आप लोग···

शशि : मैं इतनी नहीं लूँगा।

सातू : इतनी कितनी है। शुरू करने से पहले ही ना-ना करने लगे। सोडा तो है नहीं, किसी को पानी चाहिए ?

कार्तिक : जी नहीं। पानी मिलाकर मैं इसे चौपट नहीं करना चाहता।

सातू : शशि बाबू, आपको ?

शशि : नहीं, नीट ही ठीक रहेगी।

सातू : वाह, सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे निकले। यह अच्छी बात है।

कार्तिक : हिमाद्रि, ज़रा-सा चखकर देखोगे ?

हिमाद्रि : नहीं-नहीं···मुझे यह सब नहीं चलता।···आप लोग लीजिए।

कार्तिक : हम लोग तो लेंगे ही। एक दिन तुम भी जरा चखकर देखते···

हिमाद्रि : नहीं, मुझे माफ कीजिए।

कार्तिक : डरो मत, तुम्हारे स्टूडेण्ट्स नहीं जान पायेंगे। और हेडमास्टर साहब को तो कहीं दूर-दूर तक पता नहीं चलेगा।

हिमाद्रि : नहीं, वह बात नहीं है।

शशि : (व्यंग्य से) तो फिर क्या बात है ? प्रिंसिपुल का सवाल है ?

हिमाद्रि अचानक सिर उठाकर सीधे शशि की आँखों में देखता है।

हिमाद्रि : प्रिंसिपुल भी नहीं शशि बाबू। असल में मुश्किल क्या है कि स्कूल टीचर को देखते के साथ आप लोग उसे सिद्धान्तों का पिटारा मान बैठते हैं।

शशि : अम्···हाँ···तुम कह तो ठीक ही रहे हो···

सातू : तो फिर जरा-सा चखने में क्या हर्ज है ?

हिमाद्रि : हर्ज नहीं···डर है। स्कूल टीचर का कोई सिद्धान्त न भी हो तो भी उसे उसका खोल तो ओढ़ना ही पड़ता है। नहीं तो नौकरी चली जाये।

कार्तिक : तो यहाँ···इस एकान्त में एक-दो घूंट लेने में क्या डर है ?

हिमाद्रि : यह कौन कह सकता है कार्तिक दा कि एक-दो घूंट तक ही इस एकान्त तक ही बात खत्म हो जायेगी।

सातू : यह आप गलत सोच रहे हैं हिमाद्रि बाबू। एक दिन चखने से ही नशे की आदत नहीं पड़ जाती। यदि मन मजबूत हो तो···

हिमाद्रि : मेरा मन कितना मजबूत है, नहीं पता सातू बाबू। अपने को जितना कुछ जाना है उसमें अपने-आप पर बहुत भरोसा नहीं होता।

कार्तिक : अच्छा, हम लोग इधर-उधर बहके नहीं जा रहे हैं ?

हिमाद्रि : बहके जा रहे हैं ? हूँ···

कार्तिक : देखो हिमाद्रि, मुँह पर कहना तो नहीं चाह रहा था पर सारा गाँव, बड़े-बूढ़े, लड़के-बच्चे, मास्टर सभी तुम्हारी इतनी तारीफ करते हैं कि···

हिमाद्रि : (**हँसकर**) कैसी तारीफ कार्तिक दा ? मैं गणित अच्छा पढ़ाता हूँ, यही न ?

कार्तिक : अरे नहीं, इससे बहुत ज्यादा। वह सब सुनकर क्या करोगे। पर हाँ, यह सही है कि जिसका मन मजबूत न हो उसे इतनी तारीफ नहीं मिलती।

हिमाद्रि : लोग किसी के बारे में कितना जानते हैं ? भूल से वे जिसे मन की मजबूती मान बैठते हैं वह क्या है, जानते हैं ? हठ—एक हठी आदमी का जबरदस्त हठ। इसे मैं जितनी अच्छी तरह जानता हूँ उतना और कोई नहीं जान सकता।

लड़की फिर हँस पड़ती है—उस पर रोशनी पड़ती है। कमरे का प्रकाश इस बार जलता ही रहता है।

लड़की : यह हुई न बात। यही तो तुम्हारा किस्सा है···यही तुम्हारा रहस्य है···बोले जाओ···सब लोग···एक-एक आदमी का एक-एक किस्सा ···एक-एक रहस्य। कौन किसका किस्सा जानता है ? बोलो ? कौन किसके बारे में जानता है ?

हिमाद्रि : लीजिए, शुरू कीजिए आप लोग।

सातू : चीयर्स।

शशि : चीयर्स।

कार्तिक : यह क्या ?

हिमाद्रि : (**हँसकर**) वाह कार्तिक दा, पीने से पहले चीयर्स किया जाता है, आप नहीं जानते ?

कार्तिक : ना। मैं तो कहता हूँ—तारा तारा काली ब्रह्ममयी माँ। (**एक साथ बड़ा-सा घूँट लेकर कार्तिक मुख विकृत करता है।**) आ हा, क्या बात है विलायती की। जी जुड़ा गया।

शशि : जुड़ा गया नहीं, जल गया कहिए।

कार्तिक : एक ही बात है भाई, एक ही बात है।

लड़की : सच ? जी जलना और जी जुड़ाना एक ही बात है ? सच ? सच कह रहे हो ? (**पीछे की ओर उंगली से दिखलाते हुए**) तो धू-धू करती वह आग, जला रही है या जुड़ा रही है ?

लड़की पर पड़नेवाली रोशनी अचानक बुझ जाती है।

शशि : और कितनी देर लगेगी, हिमाद्रि ?
हिमाद्रि : ज्यादा-से-ज्यादा दो घण्टा। आग खूब तेज जल रही है।
कार्तिक : हाँ, कम उम्र का मुर्दा है, जलने में देर नहीं लगेगी।

अचानक एक कुत्ता जोरों से रोने लगता है। सातू बुरी तरह चौंक पड़ता है।

कार्तिक : अरे सातू बाबू, कुत्ते की रुलायी सुनकर आप ऐसा चौंक क्यों पड़े ?
सातू : (हल्की हँसी के साथ) कुत्ते की यह चीख मुझे बहुत बुरी लगती है, मुझसे कभी नहीं बर्दाश्त होती।

खिड़की में लड़की का चेहरा दिखलायी पड़ता है।

लड़की : कभी नहीं ? सच ?
शशि : हाँ, कुछ ऐसी आवाजें होती हैं जो बचपन से ही जाने क्यों···
सातू : (गम्भीर) नहीं, बचपन से नहीं। 'कभी' मैंने ऐसे ही कह दिया था– हटाइए इसे। (एक घूँट लेता है।)
लड़की : क्यों, हटाइए क्यों ? बोलो न, अपनी कहानी बोलो न।
सातू : कार्तिक बाबू, पाँच काला तो खुला ही है, इन लोगों की काली झण्डी नहीं खुलवाइएगा ?
लड़की : नहीं कहोगे ? अपनी कहानी नहीं कहोगे ?
शशि : हाँ नं। आओ तो हिमाद्रि। अभी सब काला वन्द करके लाल करता हूँ।

ताश बाँटा जाता है। लड़की खिड़की से हटकर दरवाजे के पास आकर उत्सुकता से देखती है।

शशि : बोलिए।
सातू : सोलह।
हिमाद्रि : पास।
कार्तिक : पास।
शशि : सत्रह।
सातू : मेरे।
शशि : अठारह।
सातू : पास।

शशि रंग लगाता है। ताश बाँटकर खेल शुरू होता है। लड़की पास आकर झुककर एक आदमी के पत्ते देखने लगती है। फिर सामने की ओर आ जाती है।

लड़की : (**मुलायम स्वर में**) साहब-बीवी। पेयर। साहब-बीवी पेयर। पेयर? ना···जोड़ा···? वह कविता थी न···मौसी सुनाया करती थीं···जोड़ा—जोड़ा···हाँ, याद आया—

आम का पत्ता जोड़ा-जोड़ा
आम का पत्ता जोड़ा-जोड़ा
मारा चाबुक दौड़ा घोड़ा
छोड़ रास्ता खड़ी हो बीबी
आता है यह पगला घोड़ा

धीरे-धीरे करके आवाज तेज होती ··ती है। मुट्ठी बँध जाती है—चेहरे पर वेदना का भाव उभर आता है।

पगला घोड़ा। घोड़ा पगला गया है। बन्दूक से उसे मार दिया गया है।

आल राइट, वेरी गुड। (**अचानक मुँह दबाकर उसी कुत्ते की तरह चीत्कार कर उठती है।**) ना···आ···आ···आ···

सातू : ग्यारह-तेरह-सोलह। चलिए, काली झण्डी हो गयी।

लड़की सामने एक ओर हट जाती है। उसकी नजर इन लोगों की ओर है। दर्शकों की ओर पीठ है जिस पर खुले बाल लहरा रहे हैं।

काली झण्डी (**बोतल उठाकर**) कार्तिक बाबू, गिलास बढ़ाइए, आप भी शशि बाबू।

लड़की घूमकर खड़ी होती है। खिलाड़ियों की ओर उँगली दिखाती हुई दर्शकों से कहती है :

लड़की : ये दुख भुलाना चाह रहे हैं? शराब के नशे में?

खिलखिलाकर हँस पड़ती है। हँसते-हँसते चली जाती है, पीठ पर बाल लहराते रहते हैं। सातू ताश बाँटता है।

शशि : अब और नहीं। मन नहीं कर रहा है।
कार्तिक : क्यों साहब, हार गये तो रोने लगे।

शशि : (खड़े होते हुए) नहीं, हारने की बात नहीं है।...अच्छा, क्या जीतने पर हर समय अच्छा ही लगता है।

सातू : वाह ! जीतने पर अच्छा नहीं लगता ?

शशि : नहीं ! हर जीत अच्छी लगनेवाली नहीं भी हो सकती है।

सातू : जैसे ?

शशि : जैसे ? लीजिए, आपने तो मुश्किल में डाल दिया। अरे, कोई इतना नाप-तौलकर थोड़े ही यह बात कही थी। अच्छा, मान लीजिए किसी बात पर बीवी से आपकी खूब बहस हो गयी।

सातू : (जोर से हँसते हुए) बीवी से मेरी बहस ? अरे शशि बाबू, आपको और कोई बीवीवाला नहीं मिला ?

कार्तिक : क्यों, क्या आपने शादी नहीं की है ?

सातू : ना, एकदम नहीं, एक बार भी नहीं। समय ही कहाँ मिला ?

शशि : समय न मिलने के कारण ही ब्याह नहीं कर पाये ?

सातू : लीजिए...इस बार आपने बात पकड़ ली। मैं तो यों ही...

कार्तिक : ब्याह करने की इच्छा कभी नहीं हुई ?

सातू : इच्छा हो क्यों ? ब्याह करके लोग जो कुछ पाते हैं वह मैं यदि बिना ब्याह किये ही पा जाऊँ तो ? और इतना ही नहीं, दूसरे सब लोगों से अच्छा ही पा जाऊँ तो

हिमाद्रि : सच, क्या ऐसा हो सकता है ?

सातू : लगता है, हिमाद्रि बाबू को मेरी बात जँची नहीं।

हिमाद्रि : मुझे जँचने न जँचने का सवाल नहीं है। मैं तो केवल पूछ रहा हूँ कि क्या सचमुच वैसा होना सम्भव होता है ?

सातू : देखिए हिमाद्रि बाबू, यदि आप कहें कि 'पुत्रार्थ क्रियते भार्या', तब बात अलग है। पर अपने वंश की बेल बढ़ाने की बात तो कभी मेरे लिए सर-दर्द बनी नहीं अब आप ही बतलाइए, क्या करूँ ?

हिमाद्रि : मैंने वंशबेल बढ़ाने की बात तो नहीं कही।

सातू : तो आपका मतलब घर-गृहस्थी, बीवी और उसके हाथ की बनायी स्वादिष्ट रसोई से या ? (जोर से हँस पड़ता है) वह सबकुछ नहीं है हिमाद्रि बाबू, कुछ नहीं है। आप भी जानते हैं और मैं भी अच्छी तरह जानता हूँ—असल चीज कुछ और ही है।

कार्तिक : वह असल चीज आपको कहाँ मिलती है ?

सातू : अरे कार्तिक बाबू, ठीकेदारी का काम। कुली-मजूर हैं, और-और बहुतेरी जगहें हैं...

कार्तिक : माने...भले घरों को बाद देकर ?

सातू : आप जिसे भला वर कहते हैं वह एकदम बाद तो नहीं रहा। पर उन सबमें सचमुच भला कौन था, यह कहना कठिन है।

शशि इस बीच दरवाज़े तक आकर बाहर देख रहा था। अचानक लौटकर अपना गिलास सातू की ओर बढ़ा देता है।

शशि : थोड़ी और दीजिए तो।
सातू : यह हुई न कोई बात! आइए हुजूर, बड़ी खुशी से लीजिए। **(ढालकर)** कार्तिक बाबू, आप ?
कार्तिक : **(गिलास खाली करके बढ़ाते हुए)** डिट्टो। मैं कभी पास नहीं करता।
सातू : हिमाद्रि बाबू, विचार कुछ बदला ?
हिमाद्रि : **(हँसकर)** नहीं, अभी तो नहीं।

शशि खिड़की तक जाता है।

कार्तिक : शशि बाबू, क्या बात है ? आप इस तरह बेचैन क्यों हो रहे हैं ?
शशि : **(घूमकर)** ऍं ?···नहीं, बैठे-बैठे पैर जकड़ गया, दर्द करने लगा।

लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ती है। कमरे के बाहर का वह हिस्सा आलोकित हो उठता है। भीतर अन्धकार है, केवल खिड़की के पास खड़े शशि पर हल्की-सी रोशनी पड़ रही है।

लड़की : पैर नहीं···पैर नहीं···सिर···सिर दर्द करने लगा है। और करेगा नहीं ? भीतर न जाने कितना कुछ भरा हुआ है।
तुम लोग उसे खाली तो करते नहीं, सबकुछ सँजोकर रखे रहते हो तो क्या होगा ?···मन में कुछ मथ रहा है न ? भीतर-ही-भीतर कुछ उमड़-घुमड़कर तुम्हें बेचैन किये है···तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है पर···
शशि : **(स्पष्ट रूप से, फिर भी जैसे अपने-आपमें ही)** मालती !
लड़की : मालती ? मालती न जाने कब की मरकर भूत हो गयी। मेरी तरह। जलकर राख हो गयी, ठीक इसी तरह—**(पीछे की ओर उँगली से दिखलाते हुए)**
ऐसी ही धू-धू करती आग में···ठीक मेरी तरह।

शशि चौंक पड़ता है मानो सामने किसी को देखकर अवाक् हो गया हो।

शशि : मालती।

लड़की : हाँ मालती। बोलो न, अपनी हार-जीत की कहानी कहो न। (दर्शकों से) बड़ी अच्छी कहानी है। मुझे बड़ी अच्छी लगती है।

शशि खिड़की से हटकर सामने की ओर बीच में आता है। लड़की उसके पास ही है पर पीछे। शशि जैसे किसी अदृश्य व्यक्ति से बात कर रहा है। लड़की पीछे से ही जवाब देती है।

शशि : मालती ! मालती, तुम यहाँ क्यों आयीं ?

लड़की अब मालती बन गयी है। सीधे खड़ी हो जाती है। उसके मुँह पर फीकी हँसी और आँखों में पीड़ा-भरा क्रोध का भाव है।

मालती : तुम मुझे भगा दोगे ?

शशि : तुमने वचन दिया था कि तुम कभी भी···

मालती : मैंने वचन नहीं दिया था।

शशि : बात हुई थी कि तुम कभी भी···

मालती : नहीं, कोई बात नहीं हुई थी। तुमने कहा था, तुमने। सबकुछ तुम्हारा ही कहा हुआ था।

शशि : हाँ, हो सकता है—पर क्या वही अच्छा नहीं है ?

मालती : अच्छा-बुरा-उचित-अनुचित-मंगल-अमंगल। तुमने सब ठीक कर रखा है। तुम सब ठीक-ठीक जानते हो। तुम विधाता हो न ? तुम्हारे विधान में तो भूल हो नहीं सकती ?

शशि : मालती, तुम खुद भी जानती हो कि···

मालती : (सहसा क्रुद्ध होकर) क्या जानती हूँ ? खुद क्या जानती हूँ ?

शशि : नहीं जानतीं ? इस समय इस तरह मेरे पास आने का मतलब···

मालती : चले जाने को कह रहे हो ?

शशि : इसके सिवा और उपाय भी क्या है ?

मालती : ठीक है। चली जाऊँगी। पहले भी तुमने चले जाने को कहा था, चली गयी थी। जिस रास्ते तुमने जाने को कहा था, उसी रास्ते गयी थी। हमेशा तुम्हारी ही जीत हुई है—हमेशा।

शशि : जीत ?

मालती : क्यों, जीत नहीं हुई है ? हमेशा तुम्हीं नहीं जीते हो ?

शशि : कैसी जीत ? किसकी जीत ?

मालती : तुम्हारी, और किसकी ! अपने-आपसे जब-जब तुमने लड़ाई की है, तुम्हीं जीते हो। तुममें इतनी शक्ति है—तुम जीत सके। तुम टूटे

नहीं, बिखरे नहीं, प्रवाह में बह नहीं गये। तुम हमेशा जीते। हार कैसी होती है, तुमने जाना ही नहीं।

शशि : मैं क्या हार-जीत की बात सोचकर···

मालती : नहीं, सो क्यों ? सो क्यों सोचोगे ? तुम तो सोचते हो अच्छे-बुरे की बात, उचित-अनुचित की बात, मंगल-अमंगल की बात।

शशि : (चीखकर) मालती !

घूमकर मालती के सामने खड़ा हो जाता है।

मालती : रुद्ध स्वर में

ठीक है, मैं चली ही जाऊँगी। मैं जानती थी तुम चले जाने को ही कहोगे। अपनी जीत के सुख का लोभ तुम नहीं छोड़ सकते।

शशि कुछ कहना चाहता है पर मालती उसे रोक देती है। जलती आँखों से उसे देखती हुई एक कदम और आगे आती है।

जाने से पहले तुम्हें बतला देना चाहती हूँ कि मैं क्यों आयी थी।

मालती साड़ी के नीचे से ब्लाउज खींचकर ऊपर करती है। नीचे का बटन खोलने लगती है।

शशि : (आश्चर्य से) मालती, यह क्या कर रही हो ?

अचानक एकदम अन्धकार हो जाता है। अन्धकार में लड़की की हँसी सुनायी पड़ती है। भीतर कमरे में प्रकाश हो जाता है। शशि पहले की तरह खिड़की में खड़ा है। लड़की नहीं है।

कार्तिक : पैर तो मेरा भी जकड़ गया। (उठकर अँगड़ाई लेता है) तारा··· तारा माँ।

सातू : (हँसकर) चीयर्स ! लीजिए।

कार्तिक को गिलास थमाता है।

कार्तिक : सातू बाबू जानते हैं, यह काली का प्रसाद है—श्मशान-काली का प्रसाद ! माँ—माँ। (पीता है)

सातू : शशि बाबू, क्या सचमुच और नहीं खेलिएगा ?

शशि : (एकदम आगे बढ़कर) आप कहिएगा तो खेल ही लूँगा—

सातू : नहीं, नहीं, मन न हो तो हटाइए। इससे अच्छा तो कुछ बातचीत ही

की जाये।

लड़की भागती हुई आती है— अपनी जगह

लड़की : हाँ— हाँ, यही अच्छा है। बातचीत हो—किस्सा-कहानी हो···

बड़े उत्साह से गाल पर हाथ रखकर कहानी सुनने बैठ जाती है। शशि भी इस बीच बैठ चुका है।

क्या हुआ ? शुरू करो।

सातू : कार्तिक बाबू, शुरू कीजिए।

कार्तिक : मैं ?

सातू : आपने ही कहा न कि सिंहद्वार पर बैठे-बैठे आप सारी दुनिया की खबर लिया करते हैं। उसी में से एकाध मजेदार किस्सा सुनाइए न !

हिमाद्रि : मजेदार किस्सा ? श्मशान में ? (हँस पड़ता है)

सातू : श्मशान में ही तो मजेदार किस्सा जमता है। भूत की कहानी सुनने के लिए कमरे के भीतर गुलगुले गरम बिस्तर की जरूरत होती है। वैसे मेरा मतलब लिहाफ की गर्मी से नहीं है। (जोर से हँस पड़ता है)

कार्तिक : आपने एकदम सच्ची बात कही है। श्मशान में मजेदार किस्सा ही जमता है, माने प्रेम-कहानी।

हिमाद्रि : प्रेम ! (हँस पड़ता है)

कार्तिक : (मृदु हँसी) क्यों हिमाद्रि, इस बुड्ढे खूसट के मुंह से प्रेम-कहानी की बात सुनकर हँसी आ रही है न ?

हिमाद्रि : नहीं, मैं उस कारण से नहीं हँसा।

कार्तिक : तो फिर ?

हिमाद्रि : श्मशान के साथ प्रेम का ठीक-ठीक मेल नहीं बैठा पाया, इसीलिए शायद हँसी आ गयी।

शशि : (अचानक बहुत जोर देकर), प्रेम माने ही श्मशान, श्मशान माने ही प्रेम।

लड़की : (अचानक खड़ी होकर), झूठ। एकदम झूठ।

कार्तिक : आप गलत नहीं कह रहे हैं···

लड़की : एकदम गलत—एकदम झूठ···

सातू : बात समझ में नहीं आयी। श्मशान में प्रेम-कहानी जम सकती है, यह तो समझ में आया पर प्रेम माने श्मशान और श्मशान माने प्रेम, यह बात···कुछ जमी नहीं···इन दोनों में मेल कहाँ है ?

शशि : है सातू बाबू—खासकर एक माने में।

सातू : वह क्या ?

शशि : दोनों में आग होती है और दोनों ही आग जलाकर राख कर देती हैं।

लड़की : (प्रतिवाद करते हुए) नहीं, कभी नहीं। प्रेम क्या जलाकर राख करता है ? कभी नही।

सातू : (हँसते हुए) आई सी। प्रेम की आग ?

लड़की : (आर्त स्वर में) नहीं···नहीं···वह आग जलाती नहीं···जुड़ाती है। जलाती नहीं, जुड़ाती है।

कार्तिक : प्रेम की आग ? हाँ, आप कह सकते हैं। पर श्मशान की आग में जलने से पहले प्रेम की आग में जल लेना बुरा नहीं है !

लड़की : (उत्सुकता से) हाँ-हाँ··बोलो···बोलो न···

कार्तिक : उससे कम-से-कम जिन्दा रहने का कोई कारण तो समझ में आता है।

सातू : आपके कहने का क्या मतलब कि जले बिना जीने का कोई अर्थ ही नहीं है ?

कार्तिक : मेरे-आपके लिए हो सकता है। पर लड़कियों के बारे में मैं नहीं कह सकता···(खिड़की के पास जाता है।)

लड़की : नहीं कह सकते ?—नहीं जानते···

हिमाद्रि : इसका मतलब, आप जानते हैं।

सातू : (हँसकर) ठीक आप कहना चाहते हैं कि··प्रेम की आग में जले बिना लड़कियों के लिए जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

कार्तिक : मैं सबकी बात नहीं कहता।

सातू : (हँसकर) हाँ, हाँ, समझ में आ रहा है···किसी एक खास लड़की की बात कह रहे हैं। वही किस्सा तो हम लोग सुनना चाहते हैं।

लड़की : है ? तुम्हारे पास भी कोई किस्सा है ? बोलो न। मैं तो तुम्हारा किस्सा बिल्कुल नहीं जानती।

कार्तिक : (हँसकर) अरे नहीं, नहीं, सातू बाबू···मेरा कोई किस्सा नहीं है।

लड़की : सच ? कोई भी नहीं है ?

कार्तिक : अब इसी लड़की को लीजिए।

लड़की एकदम पत्थर हो जाती है।

सातू : हाँ देखिए न, एक बार बात उठी थी फिर बीच में ही रह गयी। इस लड़की का क्या किस्सा है, आप कुछ कह रहे थे ?

लड़की : (विनती करते हुए) नहीं-नहीं···वह किस्सा अभी रहने दो··अभी

रहने दो। वह बाद में सुनाना, ऐं···वह बाद में सुनाना।

कार्तिक : यह लड़की अभी तो चिता में जल रही है। इसके लिए जीने का क्या अर्थ था आप बता सकते हैं?

सातू . क्यों, क्या यह लड़की आप लोगों की प्रेम की आग में कभी नहीं जली थी?

कार्तिक-शशि-हिमाद्रि तीनों ही हँस पड़ते हैं। लड़की दोनों हाथों से अपने कान दबाकर तेजी से चली जाती है।

शशि : प्रेम की आग में ? यह लड़की ?

कार्तिक : (रूखे स्वर में) प्रेम से यदि आपका मतलब···

हिमाद्रि : (रोकते हुए) अहा कार्तिक दा···

सातू : क्यों, क्या हुआ ?

कार्तिक : (व्यंग्य) यह गन्दी बातें, गन्दा कारबार हिमाद्रि को अच्छा नहीं लगता।

हिमाद्रि : नहीं, कारबार गन्दा होने का सवाल नहीं है। आपके कहने का।

कार्तिक : ओ हो···दोष भाषा का है। ठीक है, तो तुम्हीं अपनी पवित्र भाषा में कहो।

शशि : पवित्र भाषा ! पवित्र !

हिमाद्रि : (नाराज होकर) शशि दा···

शशि : मोरालिस्ट।

हिमाद्रि : मोरालिस्ट कौन है ?

शशि : कौन नहीं है ? तुम, मैं, कार्तिक बाबू···

कार्तिक : मुझे बाद देकर ही बात कीजिए शशि बाबू। आप लोगों के मोरेलिस्टों को मैं···जाने दीजिए। गन्दी बात कहने की मनाही है न, नहीं कहूँगा।

सातू : ओ हो···झगड़ा क्यों ? कैसे मजे में कहानी-किस्सा चल रहा था···

हिमाद्रि : किस्सा कुछ खास नहीं है सातू बाबू। मैं थोड़े में सब बता देता हूँ। इस लड़की के जनमते ही माँ मर गयी। सारे खानदान में बचा केवल इसका बूढ़ा बाप···

कार्तिक : बूढ़ा क्या, एकदम खंखड़ कहिए। फिर भी उसने पचास बरस की उम्र में सोलह बरस की लड़की से ब्याह किया···

हिमाद्रि : हाँ-हाँ, ऐसा ही तो हमेशा हुआ करता है। कौन जाने एक दिन हम लोगों के कार्तिक दा भी कुछ ऐसा ही कर बैठें···

कार्तिक : देखो हिमाद्रि, मैं और जो चाहे करूँ···

सातू : ओ हो···फिर गरमागरमी होने लगी। ऐसा करने से कहीं कहानी आगे बढ़ पायेगी।

कार्तिक : (अचानक हँसकर) अच्छा ठीक है। हिमाद्रि तुम्हीं बोलो·· जैसे मर्जी आये वैसे।

हिमाद्रि : नहीं, मैं अब नहीं कहूँगा। न हो शशि दा कहें।

शशि : किस्सा सचमुच कुछ खास नहीं है सातू बाबू। इस क़िस्से को लेकर कोई छोटी कहानी भी नहीं लिखेगा, उपन्यास की तो बात ही छोड़िए।

सातू : नहीं लिखेगा, तो न सही। हमें उससे क्या। हम लोग यहाँ साहित्य-गोष्ठी करने तो जुटे नहीं हैं कि कहानी लिखने लायक किस्सा ही कहें-सुनें!

कार्तिक : (हँसकर) हाँ, और क्या। हम लोग तो श्मशान-मित्र-मण्डल के अधिवेशन के लिए जुटे हैं, क्यों?

सातू : हाँ, शुरू कीजिए शशि बाबू।

शशि : कहा न, लड़की का बूढ़े बाप के सिवा ओर कोई नहीं था। बाप को भी लकवा मार गया था सो हिलने-डुलने लायक तक न था।

अचानक कुत्ता फिर रो उठता है। शशि रुक जाता है। सातू पहले से भी अधिक चौंक जाता है। दाँत पर दाँत बैठाये कुत्ते का रोना सुनता रहता है। फिर हाथ के गिलास की मदिरा एक झटके में गिरा देता है।

कार्तिक : हैं-हैं, यह क्या किया? पैसा खर्च करके लाया गया माल···

सातू : (सम्हलते हुए) कोई कीड़ा पड़ गया था। ज्यादा नहीं थी।

बोतल में से काफी शराब ढाल देता है। शशि और कार्तिक को भी देता है।

हिमाद्रि : (उठकर) जाऊँ, एक बार देख आऊँ—

सातू : मैं जा रहा हूँ—

खड़ा हो जाता है।

हिमाद्रि : नहीं, नहीं, आप शशि बाबू की कहानी सुनिए—

सातू : लौटकर सुनूंगा। देखूँ, कुत्ते को भी खदेड़ा जा सके तो—

सातू चला जाता है। शशि एक घूँट पीता है।

शशि : आज बहुत ज्यादा हो जा रही है।
कार्तिक : चिन्ता मत कीजिए। नशे में धुत् हो जाइयेगा तो हम लोग आपको कन्धे पर उठाकर घर ले जायेंगे।
शशि : (हँसते हुए) लौटते वक्त भी कन्धा दीजिएगा ?
हिमाद्रि : शशि दा, आप भी कैसी बातें करते हैं।
शशि : (हँसकर) ऐसी अशुभ बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिए, ऐं ? आप तो बिल्कुल औरतों जैसी बातें कर रहे हैं।
हिमाद्रि : (लज्जित होते हुए) होगी। औरतें ही तो बचपन ये सब संस्कार दिमाग में बैठा देती हैं।

कार्तिक बैठा-बैठा ताश फेंटता रहता है।

कार्तिक : हिमाद्रि, आओ, तब तक एक बाजी रंग-मिलौअल खेला जाये।

दोनों ताश बाँटकर खेलना शुरू करते हैं। शशि उठकर खिड़की तक जाता है।

हिमाद्रि : कार्तिक दा, आप बुरा तो नहीं मान गये ?
कार्तिक : (आश्चर्य से) तुम्हारा दिमाग ख़राब है ? यह भी कोई बात हुई ?

खेल चलता है। लड़की पर रोशनी पड़ती है—वह बैठी है।

शशि : बाप रे बाप ! बाहर कैसा अँधेरा है। आज क्या चन्द्रमा एकदम गायब है ?
कार्तिक : (खेलते-खेलते) है, मगर छोटे साइज का।
लड़की : (मन-ही-मन) अच्छा, उस दिन चन्द्रमा किस साइज का था ?
शशि : (बाहर देखकर) उससे क्या आता-जाता है।
लड़की : नहीं, मैं सोच रही थी, ऐसा ही छोटे साइज का था शायद। या बड़ा था ? अच्छा उस दिन पूर्णिमा थी क्या ? बड़ा-सा, गोल, चाँदी के थाल जैसा चाँद निकला था ?
शशि : (उसी तरह) उससे क्या आता-जाता है ? किसने इतना खयाल किया था ?
लड़की : खयाल नहीं किया था, क्यों ? श्मशान पर आकर कौन इतना खयाल करता है। मुर्दा जलाने आये थे, जलाकर चले गये।
शशि : (पहले की तरह) मालती।
लड़की : हाँ, मालती, मालती का मुर्दा। जलाने गये थे, याद नहीं है ?

तुम—और तुम्हारा वह लायक (**व्यंग्य में**) दोस्त···प्रदीप या दीपक न जाने क्या नाम था···

शशि : प्रदीप।

लड़की : हाँ, प्रदीप। बड़ा अच्छा नाम है। और भी न जाने कौन-कौन था—याद नहीं !

शशि : प्रदीप ! शैतान कहीं का।

लड़की : (**हँसकर**) हाँ, एकदम ठीक। शैतान, पक्का शैतान था ! उसी के लिए तो मालती···

साथ ही साथ लड़की मालती के रूप में खड़ी हो जाती है। शशि उसकी ओर बढ़ता है।

शशि : मालती।

मालती : ना, ना, ना, ना,···

शशि : मालती सुनो···

मालती : ना···ना···

शशि : सुनो मालती, मेरी बात सुनो। इसके अलावा···

मालती : नहीं···नहीं···मुझसे नहीं होगा···मुझसे नहीं होगा···

शशि : (**उसके साथ ही**) इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है मालती, और कोई उपाय नहीं है।

मालती : मुझसे नहीं होगा। अब मुझसे बिल्कुल नहीं होगा।

शशि : केवल यही एक उपाय है मालती, हम लोगों के लिए और कोई रास्ता नहीं है।

मालती : अब मुझसे नहीं होगा···अब मुझसे किसी भी तरह···किसी भी तरह···

शशि : पर मालती, यदि तुम प्रदीप से शादी नहीं करोगी तो···

मालती : (**करुण स्वर में**) नहीं···नहीं···ऐसा मत कहो···मत कहो। अब वैसा किसी भी तरह नहीं हो सकता···किसी भी तरह नहीं···

शशि : किन्तु इतने दिनों तक तो तुम···उसी से···

मालती : इतने दिनों तक मैं जानती नहीं थी···समझती नहीं थीं···अब मैं···अब मैं किसी भी तरह उससे विवाह नहीं कर सकती···तुम···

शशि : मालती···

मालती : तुमने···तुमने···मुझसे क्यों कहा ?···तुम···तुम···क्यों आये ? तुम क्यों···

शशि : किन्तु मैंने तो तुमसे कभी नहीं कहा कि···

मालती : तुम क्यों···हाँ, मैं जानती हूँ। जानती हूँ। तुमने मुझसे कभी नहीं कहा। कभी भी नहीं कहा। पर क्यों? क्यों नहीं कहा?
शशि : तुम जानतीं नहीं?
मालती : जानती हूँ। प्रदीप तुम्हारा दोस्त है, तुम्हारा भाई है, तुम्हारा सगा फुफेरा भाई। उसके साथ बचपन से तुम···जानती हूँ···जानती हूँ···सब जानती हूँ।
शशि : तब फिर क्यों···?
मालती : (**चीखकर**) केवल इसीलिए तुम मुझे अपने से दूर कर दोगे?
शशि : केवल?
मालती : केवल इसीलिए मुझसे ब्याह नहीं करोगे? केवल प्रदीप के लिए?
शशि : मालती···
मालती : प्रदीप न होता तो? यदि उसके साथ पहले ब्याह की बात न हुई होती तो?···तब भी तुम मुझे···?
शशि : मालती, इस तरह सोचने से क्या कोई···
मालती : बोलो न, तब भी, क्या तुम मुझसे ब्याह न करते?
शशि : यह भी कोई सवाल हुआ?
मालती : तब···तब फिर···प्रदीप को मुँह न दिखा सकोगे इसीलिए···
शशि : (**दृढ़ स्वर में**) प्रदीप को नहीं मालती, मैं अपने-आपको मुँह न दिखा सकूँगा। (**मालती स्तब्ध हो जाती है**) इस प्रकार अपने-आपसे हारकर, तुमसे ब्याह करके न मैं खुद सुखी हो पाऊँगा और न तुम्हें सुखी बना सकूँगा।
मालती : हारकर?
शशि : मालती, आज तुम प्रदीप को छोड़कर मुझसे···
मालती : देखो, तुम करो या न करो, प्रदीप से तो मैं किसी भी हालत में ब्याह नहीं कर पाऊँगी। तब भी तुम्हारी हार होगी?
शशि : तब भी मेरी हार होगी।
मालती : क्यों?
शशि : क्योंकि मैं कभी भी भूल नहीं पाऊँगा कि मेरी ही खातिर तुमने प्रदीप का जीवन नष्ट किया।
मालती : और···और···सुखी नहीं हो पाओगे?
शशि : सुखी हो पाना क्या सम्भव होगा?
मालती : नहीं होगा?
शशि : मालती···क्या तुम मुझे नहीं जानतीं···

मालती जरा देर तक विह्वल नेत्रों से शशि को देखती रही है, फिर डरकर दो कदम पीछे हट जाती है, हाथ की मुट्ठी मुँह तक डर के मारे उठ जाती है। फिर अचानक घूमकर वह भाग जाती है। बस, एक भीतरी चीत्कार का स्वर गूँजता रह जाता है। शशि धीरे-धीरे खिड़की की ओर लौटता है।

कार्तिक : मेरे तो सारे पत्ते खत्म होने को आये।···ये रहा लाल। चलो, अब कुछ देर और लड़ाई हो सकेगी।

अचानक बाहर से कुत्ते की कें-कें सुनायी पड़ती है, जैसे कोई मार रहा हो। स्वर धीरे-धीरे दूर होता जाता है।

हिमाद्रि : (हँसकर) सातू बाबू ने लगाया कुत्ते को (**सातू का प्रवेश**) क्यों, भगा दिया ?

सातू : हाँ। यहीं पास में आराम से बैठे थे बच्चू। जली लकड़ी खींचकर मारा बेटा को।

शशि : निशाना ठीक बैठा ?

सातू : एकदम भरपूर···पीठ पर···

शशि : मैं मारता न, तो लकड़ी कुत्ते से दस गज दूर गिरती।

सातू : नहीं, पास से मारा था इसलिए···

शशि : पास से मारने से भी वही होता। मेरा निशाना कभी ठीक नहीं बैठता। जहाँ भी निशाना लगाता हूँ, उसके ठीक उल्टी ओर निशान लगता है।

सातू बैठकर गिलास से एक लम्बा घूंट लेता है।

कार्तिक : (**ताश फेंटकर**) लो—अब बस करो।

सातू : क्या खेल रहे थे ?

कार्तिक : रंग-मिलौअल। ऐसे ही समय काटने के लिए और क्या ?

हिमाद्रि उठकर अँगड़ाई लेता है और सशब्द जम्हाई लेता है। कार्तिक दो बार चुटकी बजाता है।

सातू : क्यों हिमाद्रि बाबू, नींद आ रही है ?

हिमाद्रि : नहीं। मुरदनी में आकर मुझे नींद एकदम नहीं आती। न जाने क्यों।

सातू : आप क्या बहुत-सी मुरदनी में जा चुके हैं ?

हिमाद्रि : बहुत-सी न भी हो तो 12-14 बार तो जाना ही पड़ा होगा।

सातू : आप ?

कार्तिक : मैं इसका हिसाब-किताब नहीं रखता। बहुत बड़ा खानदान है, कोई-न-कोई रोज मरता ही रहता है। जीते-जी कोई सम्बन्ध नहीं रहता, पर मरने पर कन्धा देकर मैं अपना ऋण उतार आता हूँ। फिर खानदान के बाहर भी यदि माल का तार रहा तो…

सातू : शशि बाबू, आप भी जरूर ही इस मामले में काफी जानकारी रखते होंगे ?

शशि : हाँ, सो क्यों नहीं।

सातू : इसका मतलब यह कि मैं ही सबसे अनाड़ी हूँ। मेरी तो यह तीसरी ही मुरदनी है।

कार्तिक : ऐं ? बस ?

सातू : और नहीं तो क्या होगी ? बचपन से ही घर-द्वार छोड़कर इधर-उधर भटकता रहा। इन तीनों में से भी कोई मेरा अपना न था।

लड़की अपनी जगह दौड़कर आती है।

लड़की : क्या ? क्या ? क्या कहा ?

हिमाद्रि : आपका रिश्तेदार कोई नहीं है ?

सातू : देश में, खानदान में कौन है, कौन नहीं, पता नहीं। पन्द्रह बरस की उम्र में घर छोड़कर भाग आया था। उसके बाद से खोज-खबर ही नहीं ली।

हिमाद्रि : मतलब घर-परिवार कहने लायक आपका कुछ भी नहीं है ?

सातू : (अट्टहास करके) घर-परिवार ? जहाँ रहता हूँ वहीं घर बन जाता है। तम्बू, डाक-बंगला, कुलियों की बस्ती, सस्ता गन्दा होटल—हर कहीं रह चुका हूँ। कुछ बाकी नहीं छूटा है।

लड़की : और…और कहीं नहीं रहे हो ?

लड़की : बीच-बीच में कभी-कभी खूब सजे-बजे कमरों में भी रात कटती है। उसमें बहुत खर्च पड़ता है पर रहने लायक वहीं होता है। (हो-हो करके हँस पड़ता है)

हिमाद्रि : ओ ! समझा !

सातू : (हँसते-हँसते) समझ गये ? बड़ी बुरी सगति में पड़ गये हैं हिमाद्रि बाबू। अपना चरित्र बचाकर रखिएगा।

हिमाद्रि : (हँसकर) बुरी संगति से ही चरित्र बिगड़ जाये, वह उम्र अब कहाँ रही ?

शशि : बिल्कुल मत डरिए। हिमाद्रि का चरित्र बिगड़नेवाला नहीं है।

एकदम पक्का-पोख्ता चरित्र है।

हिमाद्रि : (हँसकर) लगता है शशि दा आज मेरे चरित्र पर भरे बैठे हैं ?

शशि : नहीं हिमाद्रि, नहीं। खाली तुम्हारे चरित्र की बात नहीं है। और आज की भी है। यह जो चरित्र नाम का जन्तु है न, मैं उसी से खार खाये हूँ। हमेशा से।

लड़की : हमेशा से ?

शशि : (बिना सुने) हमेशा से न भी हो तो बहुत दिनों से तो ऐसा है ही।

हिमाद्रि : (हँसकर) कितने दिनों से ?

लड़की : दस साल सात महीने से। नहीं ?

शशि : कोई दस साल तो हुआ होगा।

कार्तिक : मतलब यह कि दस साल पहले आपने पहली बार चरित्र खोया था—क्यों ?

शशि : नहीं, चरित्र खोया नहीं था। चरित्र पर से विश्वास खो दिया था।

कार्तिक : एक ही बात हुई।

लड़की : नहीं, एक ही बात नहीं है।

शशि : अच्छा सातू बाबू, यह जो आप ज्यादा रुपये खर्च करके कमरा भाड़े पर लेते हैं—वहाँ आपकी…जरूरत पूरी हो जाती है ?

सातू : जरूरत केवल वहीं पूरी होती है शशि बाबू, और कहीं नहीं।

शशि : आप भाग्यवान हैं।

सातू : भाग्यवान आप भी हो सकते हैं। सीधा रास्ता है। जब कहिएगा दिखला दूँगा।

शशि : मैं जा चुका हूँ। काम बना नहीं।

सातू : माने ?

शशि : माने, जरूरत पूरी नहीं हुई।

सातू : तो फिर ब्याह कर डालिए।

शशि : वह करके भी देख चुका हूँ।

सातू : ओ…ब्याह कर चुके हैं ? कब ?

शशि : आठ साल पहले। एक कोशिश की थी और क्या।

सातू : कोशिश ? किस बात की ?

शशि : अब…अब कैसे कहूँ…माने जरूरत पूरी होती है या नहीं, यह देखने की कोशिश की थी।

सातू : पूरी नहीं हुई ?

शशि : ना ! उल्टे दो साल नरक-यातना भोगनी पड़ी। खैर, अन्त में मुक्ति दे गयी, जान बची।

सातू : ओ ! तो वे गुजर गयीं ?
हिमाद्रि : हटाइए भी।
शशि : (थोड़ी खीझ में) हटाने की क्या बात है हिमाद्रि। (सातू से) वैसे वह मरी नहीं, भाग गयी।
हिमाद्रि : (जल्दी से) माने, पीहर चली गयीं।
शशि : हाँ···भाग गयी कहने से ही तो मतलब निकलता है कि किसी के साथ भाग गयी। हिमाद्रि का ध्यान इन सब बातों पर खूब रहता है। किसी ने गलत समझा और बंटाधार हुआ। क्यों हिमाद्रि ?
हिमाद्रि : मैंने उस दृष्टि से नहीं कहा था।
शशि : मानो उससे कोई फर्क पड़ता है।
हिमाद्रि : कह तो रहा हूँ कि मैंने उस दृष्टि से···
शशि : (उसकी बात अनसुनी करके सातू से) पर मुझे पूरी निश्चिन्तता हो गयी। माँ-बाप की लाड़ली बेटी थी। रहनेवाले भी बाहर के—पटना के थे। सुना कि चोरी-चोरी छिपाकर, दूसरा ब्याह भी करवा दिया है। (अचानक हँसकर) चोरी-चोरी छिपाकर, समझे सातू बाबू। मानो मैं जानता तो बाधा देता ! मैं !!
सातू : (अट्टहास करके) उन लोगों ने उतना छिपाया, फिर भी आपको पता चल गया ?
शशि : दुनिया में बहुत-से हितैषी हुआ करते हैं न; सो बड़े हितू बनकर मुझे सब सुना गये। पर उन्हें जब यह पता चला कि मैं इस मामले में कुछ नहीं करूँगा, तो मुझसे फिरण्ट हो गये। अब तो बोलचाल तक बन्द है। वह भी जान बची।

इतनी देर तक लड़की चुप बैठी सुन रही थी।

लड़की : (अचानक) अच्छा, तुम यह सब किस्सा क्यों सुना रहे हो ? मालती का किस्सा नहीं कहोगे ?
सातू : तब तो बड़ी मुश्किल है शशि बाबू। घर बसाकर भी आपका काम नहीं बना, घर भाड़े पर लेकर भी नहीं। अब आपको कहाँ भेजा जाये ?
शशि : (हँसकर) चूल्हे में। वह जो बड़ावाला चूल्हा जल रहा है न उसी में।
सातू : अरे, वह तो है ही, हम सबके लिए। पर वहाँ पहुँचने के पहले तक क्या कीजिएगा ?
शशि : तब तक···तब तक दूसरों को उस चूल्हे तक पहुँचा-पहुँचाकर

जिन्दगी काट दूँगा। किसी तरह···

लड़की : नहीं कहोगे ? मालती का किस्सा नहीं कहोगे ?

सातू : आपका यह हाल हुआ कैसे ? न घर के रहे न घाट के !

लड़की : बोलो न। बोलो न।

सातू : कम उम्र में प्रेम-व्रेम के चक्कर में पड़ गये थे क्या ?

शशि : (जोर से हँसकर) प्रेम ? बंगाली लड़का और प्रेम ? उतना दम कहाँ है ?

कार्तिक : क्यों ? बंगाली लड़कों में प्रेम करने का दम नहीं होता ?

शशि : दूसरों में किसमें कितना होता है, पता नहीं। पर मुझमें नहीं था, इतना जानता हूँ।

लड़की उठकर खड़ी होती है। थोड़ी उत्तेजित हो गयी है।

लड़की : और बंगाली लड़की में ? बंगाली लड़की में ?

सातू : अच्छा भाई, आपने किया हो चाहे न किया हो, पर क्या कोई लड़की भी आपके प्रेम में नहीं पड़ी ?

लड़की उत्सुकता से सुनती है।

शशि : (हँस पड़ता है) मेरे प्रेम में ? दुनिया में इतने लोग हैं, उन्हें छोड़कर···

लड़की : झूठे ! झूठे ! झूठे !

बोलते-बोलते दौड़कर भाग जाती है।

शशि : और यदि कोई मेरे प्रेम में पड़ता ही तो फिर मैं 'न घर का न घाट का' रहता ? मेरी यह दशा होती ?

सातू : हाँ, सो तो है। आपने तो सचमुच चक्कर में डाल दिया।

कार्तिक : चक्कर में पड़कर क्या कीजिएगा सातू बाबू। दीजिए, गिलास भर दीजिए।

सातू : हाँ, हाँ, लीजिए। (ढालकर) आप ? (**शशि कुछ सोच रहा है, जवाब नहीं देता**) शशि बाबू !

शशि : (**चौंककर**) ऐं···

सातू : गिलास दीजिए।

शशि : ओ··· (**आग्रह से**) हाँ—हाँ, दीजिए।

गिलास की शराब खत्म करके गिलास बढ़ा देता है। सातू ढालता है।

सातू : (हँसकर) तारा··· तारा···माँ।
कातिक-शशि : (हँसकर) तारा···तारा···माँ।

तीनों एक साथ पीते हैं।

सातू : हाँ, आप लोग क्या बात कर रहे थे ?
कातिक : शशि बाबू की बहू की।
सातू : नहीं-नहीं, उसके पहले, उसके पहले। मेरे जाने के ठीक पहले—
हिमाद्रि : ओ—शशि दा उस लड़की का किस्सा सुना रहे थे।
सातू : हाँ-हाँ, याद आया।

जरा देर सोचकर

अच्छा, कहानी पूरी हो गयी थी ?
शशि : हाँ, वह तो कब की पूरी हो गयी थी।
सातू : पूरी हो गयी थी ? अच्छा, अन्त में क्या हुआ था ?
कातिक : अन्त में वह मर गयी और क्या ? और उसी खुशी में हम लोग यहाँ बैठे विलायती ढाल रहे हैं।
हिमाद्रि : (हँसकर) लगता है आप तीनों का नशा एक साथ रंग ला रहा है।
सातू : (**हिमाद्रि की बात अनसुनी करके**) नहीं, नहीं, मर गयी यह तो जानी बात है। उसके पहले···न जाने कुछ रहस्य-सा था।
शशि : रहस्य ?
कातिक : नहीं, नहीं, रहस्य-वहस्य कुछ नहीं था। सीधी-सादी बात थी।

लड़की रोशनी में दिखलायी पड़ रही है।

सातू : नहीं कैसे था, मुझे अच्छी तरह याद है। अरे, उसी को लेकर तो पहले किस्से की चर्चा हुई।
कातिक : किस किस्से की चर्चा ?
सातू : लीजिए भला। मुझे ही किस्सा याद होता तो आप लोगों से पूछता क्यों ?
लड़की : उस किस्से को छोड़ दो न। उसे याद करके क्या होगा।
हिमाद्रि : ओ···वही···प्रेम की आग का किस्सा ?
सातू : हाँ-हाँ। एँ ? प्रेम की आग ? नहीं-नहीं, उसके भी पहले। आप उस समय बाहर गये थे—इसी बोतल को लेकर न जाने कौन-सी बात उठी—
कातिक : ओ, हाँ-हाँ, याद आया। आप पूछ रहे थे कि वह छोकरी मरी,

तो मलिक बाबू बोतल क्यों देने गये ?

सातू : हाँ—यही बात थी···इतनी देर बाद याद आयी। मैं कह रहा था न कि कोई रहस्य की बात थी।

हिमाद्रि : यही आपका रहस्य है ?

लड़की : मालती। मालती। तुम नहीं आओगी ? ये लोग क्या मेरा ही किस्सा कहेंगे ?

सातू : हाँ, बोलिए शशि बाबू—

शशि अन्यमनस्क है।

शशि : ऐं···

सातू : रहस्य का उद्‌घाटन कीजिए, शशि बाबू।

शशि : कैसा रहस्य ?

लड़की : मालती ! तुम नहीं आओगी ?

सातू : वाह शशि बाबू ! आप नींद का झोंका लेने लगे थे क्या ?

लड़की : मालती।

शशि : झोंका ? नहीं, नहीं, नींद का झोंका क्यों लूँगा।

हिमाद्रि : (हँसकर) शशि बाबू पर चढ़ गयी है, नशे में धुत् हो रहे हैं।

शशि : बिल्कुल नहीं। मैं···

लड़की : मालती।

सातू : नहीं, नहीं, नशा क्यों होगा ? बोलिए शशि बाबू ?

शशि : क्या ?

सातू : इस लड़की का किस्सा।

शशि : किसका किस्सा ?

लड़की : मालती।

सातू : इसी लड़की का जिसे हम लोग जलाने आये हैं।

शशि : (चौंककर) मालती ?

लड़की निश्चिन्त होती है।

हिमाद्रि : (आश्चर्य से) मालती ?

लड़की : हाँ, हाँ मालती।

सातू : तो इस लड़की का नाम मालती था।

कार्तिक शशि की बात पर ध्यान नहीं देता।

कार्तिक : इस लड़की का ? मालती ? नहीं तो।

सातू : तो फिर शशि बाबू—

शशि अचानक उठकर खड़ा होता है।

शशि : मैं जरा···मैं एक बार···अभी आया।

दरवाजे की ओर जाता है।

सातू : क्या हुआ ? (अचानक बात समझकर) ओ, बाहर जा रहे हैं? जाइए, जाइए, हो आइए।

शशि तब तक जा चुका है।

कार्तिक : मैं भी एक बार हल्का हो आऊँ।

दरवाजे की ओर जाता है।

सातू : तो चलिए, मैं भी चलूं। बंगाली यूनिटी दिखला आयी जाये। (उठते हुए) हिमाद्रि बाबू।

हिमाद्रि : (हँसकर) नहीं, मुझे जरूरत नहीं है।

कार्तिक के पीछे सातू जाता है। हिमाद्रि स्टूल पर बैठकर चौकी पर टाँग फैलाकर अँगड़ाई लेता है।

लड़की : (पास आकर फुसफुसाकर) सुनते हो ?

हिमाद्रि वैसे ही पड़ा रहता है। लड़की एक कदम और आगे आती है।

सुनते हो ? सुनो न ! सुनो···।

हिमाद्रि अचानक उठकर बैठ जाता है जैसे कोई आवाज सुनी हो। इधर-उधर देखता है। लड़की को नहीं देख पाता। इसके बाद कुर्ते की जेब से घड़ी निकालकर देखता है, फिर रख देता है। चौकी के पास से अलसाया हुआ-सा दरवाजे की ओर जाते-जाते अचानक रुक जाता है। बोतल उठाकर देखता है।

लड़की : पीयोगे ? पी लो न ? थोड़ी-सी पी लो, कुछ नहीं होगा।

हिमाद्रि जरा-सा रुककर सिर हिलाकर बोतल रख देता है। खिड़की के पास जाकर खड़ा होता है।

अच्छा, नहीं पी तो न सही। पर अपनी कहानी तो सुनाओ। सुनाओ न···अपनी···इनकी···सबकी कहानी।

अस्थिर-सा हिमाद्रि लौट आता है।

याद आ रही है न ? क्यों ?

हिमाद्रि बोतल की ओर देखता हैं। जरा-सा हाथ भी जैसे बढ़ाता है।

हाँ, हाँ, पीयो न। इसी समय पी लो, वे लोग जान भी न पायेंगे।

हिमाद्रि हाथ खींचकर घूमकर खड़ा हो जाता है।

नहीं पीयोगे ? अच्छा, तो फिर उधर देखो···वह जो लाल आग जल रही है···एकदम लाल···

हिमाद्रि खिड़की में जाता है।

देखा एकदम लाल हो रही है। याद आ रहा है न ? क्यों ? याद आ रहा है न ?···उस समय उतनी देर तक आग को देख रहे थे, तब याद नहीं आया था ? बोलो···याद नहीं आ रहा है ?

अचानक हिमाद्रि का विकृत दबा स्वर सुनायी पड़ता है।

हिमाद्रि : वह क्या मेरा दोष था ?
लड़की : नहीं तो फिर किसका था ? किसका ?

हिमाद्रि घूमकर खड़ा होता है। उसके दोनों हाथ की मुट्ठियाँ बँधी हैं।

हिमाद्रि : (बड़े क्रूर भाव से) चूल्हे में जाये।
लड़की : (हँसते हुए) चूल्हे में ही तो चली गयी। नहीं गयी ? इसी तरह तो वह भी जली थी। तुम एकटक देखा किये थे। नहीं ?
हिमाद्रि : (कष्ट से) मिलि।
लड़की : (उत्साह से) हाँ, हाँ, मिलि, मिलि।
हिमाद्रि : मिलि···मैं···मैं···
लड़की : हाँ, हाँ, बोलो न, बोलो न···बड़ी सुन्दर कहानी है।
हिमाद्रि : मैं···मैं क्या कर सकता था ?

लड़की खुले बालों का जूड़ा बाँध लेती है। आधुनिक ढंग से साड़ी का पल्ला लेती है। मानो हिमाद्रि के लिए खड़ी हो।

हिमाद्रि : (**खुद ही**) ऐसा नहीं होता। ऐसा नहीं हो सकता। इतना बड़ा अन्तर। जमीन-आसमान का अन्तर।

लड़की मिलि बनकर आगे आती है।

मिलि : हिमाद्रि !
हिमाद्रि : बोलिए।
मिलि : (**पीड़ा से**) बोलिए ?
हिमाद्रि : हाँ, बोलिए। क्या करना होगा ?
मिलि : मैंने ऐसा क्या किया है हिमाद्रि जो तुम इस तरह कह रहे हो ?
हिमाद्रि : आपने ? आपकी जो मर्जी आये कीजिए, उसमें मैं क्या कह सकता हूँ ?
मिलि : हिमाद्रि ! मैं जानती हूँ···मैं जानती हूँ तुम···पर हर समय मुझसे हो नहीं पाता। जिस समाज में मैं बड़ी हुई हूँ, जिन लोगों को बचपन से देखा है, जिनके साथ उठी-बैठी हूँ···
हिमाद्रि : मुझसे यह सब क्यों कह रही हैं, मिस राय ? मैं आपके भाई को पढ़ाता हूँ, उस बारे में यदि कुछ कहना हो तो·· या उस काम में मुझसे कोई भूल हुई हो तो··कहिए।

मिलि जरा देर चुप रहती है।

मिलि : तुम मेरी मामूली-सी कमी भी नहीं सह सकते, क्यों ?

हिमाद्रि चुप रहता है।

डैडी बड़े आदमी हैं—यही मेरा सबसे बड़ा दोष है न ?

हिमाद्रि चुप।

(**अचानक पीड़ा से**) तुम क्या चाहते हो कि मैं तुम्हारे पैरों पर गिरकर तुमसे माफ़ी माँगूं ?
हिमाद्रि : मिस राय !
मिलि : बोलो। बोलो। तुम वही चाहते हो ? यदि हाँ, तो मैं वही करूँगी। तुम जानते हो कि तुम जो चाहोगे मैं करूँगी। क्योंकि किये बिना मुझसे रहा नहीं जायेगा—क्या इसीलिए तुम बार-बार मुझे जलील करना चाहते हो ?
हिमाद्रि : मिस राय, आप उत्तेजित हो गयी हैं, इस समय बात न करना ही ठीक है। मैं चलूं।

हिमाद्रि खिड़की में लौट जाता है।

मिलि : हिमाद्रि ! हिमाद्रि ! (**पीड़ा के कारण विकृत स्वर में**) आई हेट यू ···आई हेट यू···हेट यू···हेट यू···

दौड़कर चली जाती है। हिमाद्रि खिड़की में खड़ा बाहर की ओर देखता रहता है। सातू और कार्तिक की हँसी की आवाज सुनायी पड़ती है। हिमाद्रि चौंककर खिड़की से हट आता है। सातू और कार्तिक कमरे में आते हैं।

सातू : (जोरों से हँसते हुए) क्या बात कही है आपने। एकदम सोलह आने खरी।

कार्तिक : मगर ऐसा लगा जैसे शशि बाबू जरा···

सातू : वह सबकुछ नहीं है। बहुत दिनों बाद पी है न, इसलिए। जरा देर बाहर खुली हवा में बैठने से ही ठीक हो जायेंगे।

कार्तिक : (**दरवाजे तक जाकर देखता है**) पास ही बैठे हैं, दिख रहे हैं।

हिमाद्रि : क्या शशि दा की तबियत ठीक नहीं है ?

सातू : नहीं, कुछ खास नहीं जरा सिर में दर्द हो गया है, इसीलिए थोड़ी देर बाहर बैठना चाह रहे हैं। फिक्र की कोई बात नहीं है।

कार्तिक और सातू बैठकर एक-एक घूंट लेते हैं। हिमाद्रि दरवाजे तक जाकर शशि को शायद देखता है।

कार्तिक : तारा···तारा···माँ···नैया पार करो।

सातू : (हँसकर) अभी ही पार होना चाहते हैं ?

कार्तिक : नहीं, नहीं, अभी तो बहुत मजे में हूँ, अभी क्यों ? (जरा सोचकर) और वैसे पार हो जाने में भी कोई नुकसान नहीं है। मैं किसी को रोटी-कपड़ा तो देता नहीं इसलिए मेरे पीछे मेरे नाम को कोई रोयेगा भी नहीं।

सातू : रोटी-कपड़ा न देने से कोई रोता नहीं ?

कार्तिक : (फिर सोचकर) ना···मुझे तो ऐसा कोई दिखता नहीं जो उसके बिना भी मेरे लिए रोये। आपके कोई है क्या ?

सातू : मेरे ? ना। रोना तो दूर रहा, कोई बात पूछनेवाला भी नहीं है।

कार्तिक : सबको चूल्हे में डाल चुके हैं ?

सातू : सब कहने से तो मतलब बहुत-से लोगों से हो जाता है। माने कम-से-कम एक से अधिक तो होता ही है।

कार्तिक : तो क्या आपके—एकमेवाद्वितीयम् ? कोई एक सबसे खास भी थी ?

सातू अट्टहास करता है।

सातू : एकमेवाद्वितीयम्। बाप रे बाप ! इतना बड़ा कारबार नहीं था कार्तिक बाबू। कहाँ से होगा, बताइए ? पन्द्रह बरस की उम्र से जिस तरह की लाइफ लीड की है उसमें···

कार्तिक : वाह साहब ! मैं तो मानता था कि देश-परदेश घूम-घामकर आपने बहुत तरह की जानकारी···

सातू : ओ, आप जानकारी की बात कह रहे हैं ?

कार्तिक : नहीं···माने···बहुत तरह के लोगों के परिचय में आने से भी तो जानकारी बढ़ती है। मतलब, लड़कियों के परिचय में···

सातू : कैसी लड़कियों के साथ मेरा परिचय रहा है, यह तो आपने सुना ही। मेरी मौत का, उनमें से किसी पर कोई असर पड़ेगा, कहना कठिन है।

कार्तिक : शरद बाबू ने अपने उपन्यासों में जिनकी चर्चा की है, क्या वैसी कोई आपको नहीं मिली ?

सातू अट्टहास करता है। हिमाद्रि हल्का-सा चौंककर घूमकर खड़ा होता है। लड़की पर प्रकाश पड़ता है।

सातू : कहाँ मिली ?

लड़की : अच्छा, तुम लोग कहना चाहते हुए भी कहते क्यों नहीं ? सबकुछ मन में ही क्यों दबाये रखते हो ? कहने का मन नहीं करता ? जोर से चिल्लाकर सबकुछ कह डालने की इच्छा नहीं होती ?

हिमाद्रि अचानक दरवाजा छोड़कर आगे आ जाता है।

हिमाद्रि : सातू बाबू, मैंने अपना निर्णय बदल दिया है। मुझे थोड़ी-सी दीजिएगा ?

सातू : (उत्साह से) वाह ! वाह ! क्या बात कही है, हिमाद्रि बाबू ! इसी की तो कमी थी। भला बताइए, एक ही तीर्थ करें हम चारों और हम में से एक को फल-प्राप्ति अलग हो, यह भी कोई बात हुई ?

बड़े उत्साह के साथ चौथे गिलास में ढालना शुरू करता है।

कार्तिक : और तीर्थ भी श्मशान तीर्थ।

सातू : हाँ, बिल्कुल ठीक।

हिमाद्रि : बस, बस। और नहीं।···अरे, इतनी-सी दे दी ?
सातू : हिमाद्रि बाबू, यह तो होमियोपैथिक डोज है। पर हाँ, पहली बार एकदम नीट मत लीजिए। जरा रुकिए, मैं थोड़ा पानी मिला दूँ।
हिमाद्रि : नहीं, आप लोगों ने जैसी ली है, मैं भी वैसी ही लूंगा।
कार्तिक : ब्रेवो ब्रदर। पर छोटे-छोटे घूंट लेना।

हिमाद्रि एक घूंट पीकर मुँह बनाता है। लड़की उत्सुकता से देख रही है।

लड़की : पी ली ? अब बोलोगे ?
हिमाद्रि : अरे बाप रे, यह तो बड़ी कड़वी है। आप लोग किस सुख की खातिर इस जहर का पान करते हैं ?
कार्तिक : इसका स्वाद जीभ को नहीं मिलता, दिमाग को मिलता है, समझे।
लड़की : हाँ, दिमाग को। तभी तो लोग कहते हैं कि यह आग की तरह है। जलाती भी है और जुड़ाती भी है। जलाती भी है और जुड़ाती भी है। नहीं ?
कार्तिक : (बोतल उठाकर) यह बोतल तो खत्म हो चली।
सातू : अब बोलिए। एक बोतल और लाकर समझदारी का काम किया न ? नहीं तो अब क्या करते ?
कार्तिक : वह समझदारी की बात तो मेरे मन में भी आयी थी। पर खाली समझदारी के भरोसे तो लाला की दुकान से माल उठाया नहीं जा सकता था।

सातू अट्टहास करता है।

लड़की : थोड़ी और लो न ? थोड़ी और ले लो।

हिमाद्रि एक घूंट और लेता है।

सबकुछ भुलाने के लिए पी रहे हो ? पर भुला नहीं सकोगे। इससे और याद आयेगी। और। तब अपना किस्सा सुनाओगे, क्यों ? सुनाओगे न ?

शशि दरवाजे पर लौट आता है।

सातू : आइए, आइए शशि बाबू ! दिमाग खुलासा हुआ ?
शशि : दिमाग ? मेरे दिमाग को क्या हुआ था ?—मेरा गिलास कोन-सा है ?

सातू : यह रहा। रुकिए, भर दूँ।

भर देता है। एक घूँट पीकर शशि खिड़की में जाकर खड़ा होता है।

शशि : बाप रे बाप, कैसी अँधेरी रात है ! ऐसी रात तो कभी देखी ही नहीं थी।

लड़की : नहीं देखी थी। तब उस दिन क्या पूर्णिमा थी ?

सातू : शशि बाबू, आपने तो कहानी पूरी ही नहीं की, बीच में छोड़ दी।

शशि : (धीरे-धीरे घूमकर) कहानी ?

लड़की : (फुसफुसाकर) हाँ, कहानी। मालती की कहानी। मालती की।

सातू : हाँ, इसी लड़की की कहानी।

लड़की : (शशि को देखते हुए) नहीं, मेरी कहानी नहीं। मालती की कहानी, मालती की।

शशि अचानक आगे आकर चौकी पर गिलास रख देता है।

शशि : (उत्तेजित होकर) अच्छा सातू बाबू, एक सवाल का जवाब दीजिएगा ?

सातू : (अवाक् होकर) हाँ, दूँगा क्यों नहीं ?

शशि : (जल्दी से) मान लीजिए मैं आपका दोस्त हूँ, खूब गहरा दोस्त···

सातू : सो तो हैं ही।

शशि : नहीं···नहीं, ऐसा नहीं···और भी गहरा···एकदम बचपन से···या मान लीजिए, मैं आपका भाई हूँ···छोटा भाई। मैं एक लड़की से आपका परिचय करवाता हूँ और कहता हूँ कि मैं इससे ब्याह करने जा रहा हूँ। लड़की भी, मान लीजिए, मुझसे ब्याह करना चाहती है। आप··· आप क्या उसे···(रुक जाता है)

लड़की : और बताओ न ? इतने से कैसे काम चलेगा ?

शशि : (एक बार सिर पर हाथ फेरकर) नहीं···मैं ठीक से कह नहीं पाया। मान लीजिए···आप जानते हैं कि मैं बुरा आदमी हूँ। नहीं···इससे भी बढ़कर कि बड़ा निष्ठुर हूँ, क्रूर हूँ, स्वार्थी हूँ,···मेरे साथ ब्याह करके लड़की सुखी न हो पायेगी। आप यह जानते हैं···खूब अच्छी तरह जानते हैं। तब भी क्या···(फिर रुक जाता है)

लड़की : सच बात कहो न। आगे बोलो।

शशि : इतना ही नहीं···आप यह भी पाते हैं कि आप उस लड़की से प्रेम करते हैं, लड़की भी आपको चाहती है—लड़की यह अच्छी तरह समझ गयी है कि प्रदी···माने मेरे साथ ब्याह करके उसका जीवन नष्ट हो

जायेगा–तब भी···तब भी क्या आप उसे मेरे हाथों सौंप देंगे ?

सब चुप होकर सुन रहे हैं। कोई बोलता नहीं।

बोलिए। सौंप देंगे ? सबकुछ जानते-समझते हुए भी ? इस तरह उसे आग में झोंकना ठीक होगा ? मैं आपका दोस्त हूँ, भाई हूँ···क्या इसीलिए ऐसा करना उचित होगा ?

सातू : बड़ा टेढ़ा सवाल पूछा आपने, शशि बाबू। इसका क्या जवाब दूं।

शशि : आप कार्तिक बाबू ?

कार्तिक धीरे-धीरे नकारात्मक सिर हिलाता है।

तुम हिमाद्रि।

हिमाद्रि : (जरा रुककर) यही सवाल यदि आप आज सुबह पूछते···या शाम तक भी पूछते तो सीधा-सा छोटा-सा उत्तर देता—हाँ। क्योंकि वह लड़की आपके दोस्त की मँगेतर है।

लड़की : (साँस रोककर) और इस समय ?

हिमाद्रि : (धीरे-धीरे) इस समय···पता नहीं शशि दा। (जरा रुककर, हाथ का गिलास ऊपर उठाकर) यदि पता होता तो शायद इसे पीने की जरूरत न पड़ती।

लड़की : (मुँह ऊपर करके प्रायः कुत्ते के रोने की आवाज की तरह आवाज करती हुई)

मा···ल···ती···ई···ई···। ये लोग नहीं जानते। नहीं जानते और यदि जानते भी हैं तो कहते नहीं।

कमरे के भीतर इस बीच धीरे-धीरे प्रकाश कम होते-होते करीब-करीब अन्धकार-सा हो गया है। शशि इधर आगे आ गया है।

शशि : मालती।

लड़की मालती बनकर सामने आकर खड़ी होती है। दोनों पर रोशनी पड़ रही है—शेष अन्धकार।

मालती।

मालती : हाँ, मैं चली जाऊंगी। मैं जानती थी, तुम चली जाने को ही कहोगे। अपनी जीत के सुख का लोभ तुम नहीं छोड़ सकते। (शशि जैसे कुछ कहना चाहता है। उसे रोकती हुई) जाने से पहले केवल तुम्हें बता देना चाहती हूँ कि मैं क्यों आयी थी।

मालती साड़ी के नीचे से ब्लाउज खींचती है। सबसे नीचे का बटन खोलने लगती है।

शशि : (आश्चर्य से) यह क्या कर रही हो मालती ?

मालती की उँगलियाँ रुक जाती हैं। आँखों में पहले हल्का आश्चर्य फिर सन्तोष। फिर बड़ी पीड़ामयी तीखी हँसी। शशि सम्मोहित-सा उस हँसी की ओर देखता रहता है। नीचे का बटन खोलकर मालती धीरे-धीरे शशि की ओर पीठ करके खड़ी होती है। पीछे का एक हिस्सा खोलकर उसे दिखलाती है। हल्की-सी चीत्कार के साथ शशि एक कदम पीछे हटता है।

यह क्या ?

मालती : तुम्हारे दोस्त—तुम्हारे भाई का प्रसाद।

शशि : क्यों ?

मालती : मैंने कहा था कि मैं उससे घृणा करती हूँ—और तुम्हें प्यार।

शशि एकदम चुप। मालती ब्लाउज नीचे करके बटन लगाने लगती है।

किस चीज से किया है, जानते हो ?

शशि बोल नहीं पाता।

हम लोगों के ब्याह में तुमने जो चाँदी का चाकू दिया था, उसे ही गरम करके।

शशि फिर चुप।

चाँदी खूब जल्दी गरम हो जाती है न, इसीलिए। उसके पास समय बहुत थोड़ा था।

शशि देखता ही रह जाता है। मालती शशि की आँखों में आँखें डाले ब्लाउज साड़ी के नीचे घुसा लेती है। उसके चेहरे पर वही तीखी हँसी है— जलती हुई। धीरे-धीरे सब अन्धकार हो जाता है। पुनः कमरे में चौकी के पास रोशनी पड़ती है। शशि ने जहाँ पर खड़े होकर इनसे सवाल किया था, वहीं वैसे ही खड़ा है। मालती नहीं है।

शशि : नहीं पता, हिमाद्रि ?

हिमाद्रि : न शशि दा ! इस समय कुछ पता नहीं…कुछ नहीं कह सकता।
शशि : आप लोगों में से किसी को भी पता नहीं है ?

सातू और कार्तिक गरदन हिलाते हैं।

मैं जानता हूँ। आप कर्त्तव्य समझकर उस लड़की को मेरे हाथों सौंप देंगे और साल-भर के अन्दर अपने ऊपर तेल छिड़ककर वह आग लगा लेगी। तब हम और आप उसके जले शरीर को कन्धा देंगे। और इसी तरह उसे यहाँ आकर फूँक देंगे।

सब चुप।

आप कहेंगे—वह मेरे अत्याचार से मरी है। ठीक ही तो है। इसीलिए मरी है। आपका क्या दोष ? दुनिया यही कहेगी—आपका क्या दोष ? और आप भी दुनिया के साथ गला मिलाकर जब तक कह सकिए…जब तक…

अचानक गिलास उठाकर एक घूंट में खत्म कर देता है। उसके बाद एकदम शान्त ठण्डे स्वर में बोलता है।

ताश दीजिए सातू बाबू। देखूँ, इस बार जीत होती है या हार।

यवनिका

द्वितीय अंक

स्थान वही। पर्दा खुलने पर अपनी जगह पर लड़की दर्शकों की ओर मुँह करके बैठी है।

लड़की : कैसी लगी कहानी ? मालती की कहानी ? बड़ी प्यारी है न ? मुझे बड़ी अच्छी लगती है।

उन लोगों की कहानियाँ भी हैं—एक-एक आदमी की एक-एक कहानी। एक साथ सब सुनने से शायद उतनी अच्छी न लगे। कुछ-कुछ मिलती-जुलती-सी है न। पर मुझे इनमें से हर एक कहानी अच्छी लगती है। समान रूप से अच्छी लगती है। बार-बार सुनने का मन करता है। प्रेम-कहानी है न···! ···हाँ प्रेम-कहानी। प्यारा-सा शब्द है, है न ? प्रेम। ठीक उस आग की तरह जलाता भी है और जुड़ाता भी है। यदि ऐसा न होता तो···

अच्छा यह पीड़ा, यातना, जलना, यह सब एकदम फालतू बात है न ? इनमें से कोई भी मतलब की बात नहीं है, असल बात नहीं है। मरने पर तो जलना ही होगा, जैसे अभी मैं जल रही हूँ। पर यदि केवल यह जलना ही रहे···केवल यही···तो···ओह···

दोनों हाथ से मुँह ढँककर बैठ जाती है। कमरे के भीतर धीरे-धीरे रोशनी होती है। आवाज सुनायी पड़ती है।

कार्तिक : सोलह।
शशि : मेरे।
कार्तिक : सत्रह।
शशि : मेरे।
कार्तिक : अट्ठारह।
शशि : मेरे।
कार्तिक : उन्नीस
शशि : मेरे।
हिमाद्रि : क्या कर रहे हैं शशि दा ? चार काला खुला हुआ है—
शशि : तुम रुको तो। मेरे।
कार्तिक : बीस।

शशि : मेरे।
कार्तिक : पास ।
सातू : डबल।
हिमाद्रि : हुआ न ? चार काला पहले से ही है। इस बार डबल। काली झण्डी पूरी हो गयी।
शशि : (हँसकर) लाओ, रंग लगाऊँ।

रंग लगाता है। ताश बाँटकर खेल शुरू होता है। दूसरी बोतल चल रही है। लड़की धीरे-धीरे मुँह उठाती है।

लड़की : शाम के समय आसमान किस तरह धीरे-धीरे रंग बदलता है। मेरे कमरे की खिड़की पश्चिम की ओर है। बचपन से ही हर शाम को मैं खिड़की में खड़ी होकर आसमान का रंग बदलना देखा करती थी। मुझे बड़ा अच्छा लगता था। पन्द्रह साल की उम्र तक रोज···हाँ सच···रोज शाम को उसी खिड़की में खड़ी होकर मैंने आसमान को देखा था। उसके बाद तीन साल तक नहीं देख पायी। कमरे में खिड़की ही नहीं थी···पूरब-पश्चिम की तो बात ही क्या। बाहर की ओर जितनी खिड़कियाँ थीं, बन्द थीं। सबमें धुँधला शीशा लगा हुआ था। रोशनी आती थी पर दिखलायी कुछ भी नहीं पड़ता था। ओह, शाम के समय आसमान देखने के लिए मैं कैसा छटपटाया करती थी। मन करता था काश, एक दिन···एक शाम पश्चिम की ओर की एक खिड़की खुल जाती तो जी भरकर आसमान के उस रंग को···
सातू : रंग खोलिए।
कार्तिक : काला पान।
शशि : क्यों, कोई एतराज है ?
कार्तिक : नहीं-नहीं, एतराज क्यों होगा। चलो हिमाद्रि।
लड़की : तीन साल बाद···तीन साल बाद फिर से आसमान देख पायी। वही पश्चिमवाली खिड़की थी। कब्जा टूट गया था, पल्ला नीचे झूल आया···झूले ! बरसात में छत से पानी चूता था···चूए। बाबूजी को लकवा मार गया था, वे हर समय सोये रहते थे। घर की हालत बुरी थी फिर भी मुझे सबकुछ बड़ा अच्छा लगा था क्योंकि रंग बदलते आसमान को मैं देख सकती थी। उन बदलते रंगों के साथ न जाने कितने भाव मेरे मन में आते और जाते। मुझे लगता जैसे मैं नववधू हूँ···उसी सलज्जा सन्ध्या-सी मैं भी लजाई-सी आरक्त हो उठती। सोचती···काश कोई राजकुमार मुझे देखता, मेरा वरण करता···

(अचानक चौंककर) हे भगवान···देखा···मैं क्या-क्या अण्ड-बण्ड बक गयी। यह कहानी थोड़े ही है। छि:···अच्छा तुम लोगों का खेल खत्म नहीं होगा ? मैं तो जलकर राख होने को आयी।

कार्तिक : (अचानक जोर से) यह लीजिए साहब, रंग का इक्का।

सातू : वाह, वाह, कार्तिक बाबू, यही तो चाहता था।

हिमाद्रि : चलो···गया···

लड़की पर धीरे-धीरे अँधेरा हो जाता है।

सातू : तेरह, सोलह, अट्ठारह, उन्नीस···

हिमाद्रि : गिनकर क्या कीजिएगा। वह तो जानी बात है।

सातू : उन्नीस···इक्कीस—काली झण्डी।

शशि : (हँसते हुए) फिर हार गया न !

हिमाद्रि : हारिएगा नहीं ? बिना सोचे-विचारे उन्नीस-बीस कॉल दीजिएगा तो और क्या होगा ?

शशि : इसे ही तो खेल कहते हैं। बहुत सोच-विचारकर खेलने से क्या खेल होता है ?

सातू : हिमाद्रि बाबू, अपना गिलास खाली कीजिएगा।

हिमाद्रि : नहीं, मैं और नहीं लूंगा। आप लोग लीजिए।

सातू : अरे वाह ! आपने तो पहली बार जो जरा-सी ली थी उतनी ही···

हिमाद्रि : उतनी ही काफी थी। मेरा काम हो गया।

सातू : आपका काम ?

हिमाद्रि : (उठकर) मैं एक बार देख आऊँ।

जल्दी से चला जाता है।

सातू : (आँख मारकर) कार्तिक बाबू, उसका गिलास दीजिए तो···

कार्तिक हँसते हुए गिलास बढ़ाता है। सातू उसमें थोड़ी और ढाल देता है। गिलास फिर से यथास्थान रख दिया जाता है।

शशि : शुरू में थोड़ा नशा हुआ था। अब तो जैसे वह भी मिटा जा रहा है। क्यों, बतला सकते हैं ?

सातू : मुझे भी वैसा ही लग रहा है।

कार्तिक : विलायती बोतल न होती तो कहता कि सालों ने पानी मिला दिया होगा।

सातू : हो सकता है, खेल में हम लोग मशगूल थे इसलिए ऐसा हुआ हो। थोड़ा रिलैक्स होकर पीये बिना नशा रंग नहीं लाता।

कार्तिक : चलिए, रिलैक्स होकर पीकर देखा जाये (**टाँगें फैलाकर बैठता है**) क्या कहते हैं—चीयर्स ?

सातू : (हँसकर) तारा···तारा···माँ···

शशि : आपको कल काम करने में तकलीफ न होगी ? सारी रात जगने के बाद दिन-भर धूप में···

सातू : नहीं, शशि बाबू, इन सबकी आदत पड़ गयी है। रात में ही सोना होगा, ऐसा मेरी जन्मपत्री में नहीं लिखा है। जब समय मिले, एक नींद ले सकता हूँ।

शशि : मतलब, नेपोलियन की तरह ?

सातू : (अट्टहास) हाँ, बिल्कुल। बस, दिग्विजय नहीं हो पायी···क्या कहूँ।

कार्तिक : मुझे सुबह जरूर झपकी आयेगी। डाक्टर साहब की नजर न पड़े···यही भगवान् से मनाता हूँ।

सातू : क्यों ? किसी मुरदनी के सिलसिले में आप सारी रात जगे हैं, यह सुनकर···

कार्तिक : अरे सातू बाबू, आपका अपना कारबार है···आप क्या जानिए कि नौकरी में कितने बन्धन होते हैं।

सातू : हाँ, सो तो है। मैंने तो कभी नौकरी की नहीं···

कार्तिक : डाक्टर साहब का कहना है कि नींद के झोंके में मैं ऊटपटाँग दवा देकर रोगी की जान ही ले लूँगा।

सातू : अच्छा कार्तिक बाबू, आप तो बहुत दिनों से इस काम में हैं न ?

कार्तिक : हाँ···करीब छब्बीस साल हो रहे हैं।

सातू : आपसे कभी दवा देने में कोई भूल नहीं हुई ?

कार्तिक : भूल ? होगी क्यों नहीं ? न जाने कितनी हुई है। पर हाँ, ऐसी भूल कभी नहीं हुई कि रोगी मर ही जाये। सच पूछिए तो, तेज जहर का तो बहुत काम पड़ता नहीं।

सातू : थोड़ा-बहुत पड़ता है ?

कार्तिक : हाँ, सो क्यों नहीं। आपको किसी का सफाया करना होगा तो बतलाइएगा।

सातू : (अट्टहास) नहीं साहब, अभी तक वैसी जरूरत कभी नहीं पड़ी।

शशि : मुझे पड़ती—यदि बीवी खुद ही रिहा न कर गयी होती तो।

सातू : अच्छा, आपसे कभी किसी ने जहर माँगा है ?

कार्तिक : (दृढ़ स्वर में) नहीं।

लड़की पर रोशनी पड़ती है।

सातू : कोई माँगता तो क्या करते ?

कार्तिक : न देता।

लड़की : क्यों ?

कार्तिक : खून-खराबे में मैं नहीं पड़ता।

सातू : नहीं-नहीं कार्तिक बाबू···मैं खून की बात नहीं करता। मान लीजिए, कोई अपने लिए ही चाहता तो···?

कार्तिक : (तनिक हँसकर) तब भी न देता।

लड़की : हाँ। न देते। पर उसके बदले में कुछ और दे सकते ? देते ?

शशि : मान लीजिए···उसे बहुत ही जरूरत होती ? जिन्दगी से मौत यदि उसके लिए अधिक अच्छी होती तो ?

कार्तिक : जिन्दगी से मौत कभी अच्छी नहीं होती।

लड़की : नहीं होती ?

शशि : यह आप क्या कहते हैं कार्तिक बाबू ?

कार्तिक : ठीक ही कह रहा हूँ। मैं जो विश्वास करता हूँ, वही कहता हूँ।

शशि : यदि वह कुछ ऐसी तकलीफ भोग रहा होता···

कार्तिक : हाँ, तकलीफ दूर हो सकती है, यह मैं मानता हूँ। पर हम लोग जिन्दगी से मौत के अच्छी होने की बात कर रहे थे। जिन्दा रहने से अच्छा और कुछ भी नहीं है।

शशि : मैं नहीं मानता।

कार्तिक : (हँसकर) आपको मानने को कौन कहता है ? मैं तो अपने मानने की बात कह रहा हूँ। आप लोग चीयर्स कहते हैं, मैं तारा-तारा माँ कहता हूँ—इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?

शशि : (थोड़ा उत्तेजित होकर) किन्तु मान लीजिए, किसी की जिन्दगी में इतनी तकलीफ हो कि उसके लिए जीने का···

कार्तिक : लोगों की तकलीफ कम करने का जिम्मा तो मैंने लिया नहीं है।

लड़की : और तकलीफ देने का ? मालती की तरह तकलीफ देने का ? क्या उसका जिम्मा तुमने किसी दिन नहीं लेना चाहा था ?

शशि : जिम्मा है या नहीं, इसका निर्णय करनेवाला कौन है ?

कार्तिक : खुद ही। निर्णय सही हो चाहे भूल, करनेवाला तो व्यक्ति खुद ही होता है।

सातू : आप लोगों ने तो जीवन-दर्शन की बातचीत शुरू कर दी।

शशि : (हँसकर) अरे भाई, यह श्मशान की महिमा है और उसके ऊपर से श्मशान-काली का दिव्य प्रसाद। जीवन-दर्शन की बात हो, इसमें ताज्जुब क्या है।

सातू : तो हो न। थोड़ा ज्ञान-लाभ ही किया जाये। मेरी जिन्दगी तो भाग-

दौड़ में ही बीती, कभी उस पर रुककर गौर करूँ, इस तक की फुरसत नहीं मिली।

कार्तिक : जीवन न सही, आपने मौत तो देखी है ?

सातू : ऐं ? मौत तो बराबर ही चारों ओर देखता रहता हूँ।

कार्तिक : इस तरह नहीं, खूब अच्छी तरह। देखी है ?

लड़की : बोलो। बोलो न !

सातू : (इधर-उधर करते हुए) हाँ, शायद वह भी देखी है। कम-से-कम एक बार तो देखी ही है।

कार्तिक : उस समय, जीवन को नहीं देखा था ?

सातू : (धीरे-धीरे) शायद···देखा था। हो सकता है आपकी बात ही ठीक हो। मौत को देखने पर ही शायद जिन्दगी को देखा जा सकता है।

लड़की : जिन्दगी-मौत। जीवन-मरण। किन्तु मरण में भी यदि जीवन न दिखे···न उभरे···? यदि मरण केवल मरण ही रह जाये ?

सातू : देखकर अच्छा नहीं लगा था।

कार्तिक : अच्छा लगने की बात तो नहीं हो रही है। बात केवल देखने की हो रही है।

शशि : क्यों, आपने ही कहा न कि जिन्दगी से अच्छी और कोई चीज नहीं है ?

कार्तिक : हाँ, जरूर कहा है। अब भी कहता हूँ।

शशि : बात कुछ उल्टी-पुल्टी-सी नहीं लग रही है ?

कार्तिक : नहीं, उल्टी-पुल्टी क्यों होगी ? अच्छा लगना और अच्छा होना क्या एक ही बात है ?

सातू : कार्तिक बाबू, जाने दीजिए, आपका जीवन-दर्शन मुझे बड़ा भारी पड़ रहा है।

कार्तिक : (हँसकर) फिर भी आपने जीवन का कम-से-कम एक बार तो दर्शन किया ही है।

लड़की : जीवन ? जीवन क्या है ? कोई मुझे समझा सकता है ? पगला घोड़ा ? मारा चाबुक दौड़ा घोड़ा ! छोड़ रास्ता खड़ी हो बीवी— आता है यह पगला घोड़ा। बीवी यदि रास्ता न छोड़े ? यदि रास्ता छोड़कर न खड़ी हो ? तो क्या उसके ऊपर से चले जाओगे ?

सातू : दर्शन करके केवल इतना समझ में आया था कि जीवन का कोई सिर-पैर नहीं है।

लड़की : पगला घोड़ा ! घोड़ा पगला गया है !

सातू : जीवन केवल मौत ला सकता है।

लड़की : बन्दूक से मार दिया है।
सातू : और किसी काम लायक नहीं है।
कार्तिक : अरे वाह, यह काम क्या कोई छोटा काम है ?
लड़की : आल राइट, वेरी गुड ?
शशि : (चिढ़कर) कार्तिक बाबू, आपने बहुत ज्यादा पी ली है। न जाने क्या-क्या कहे जा रहे हैं।
कार्तिक : वाह-वाह ! यदि ज्यादा पी लेने से ही ये सब आलतू-फालतू बातें की जा सकती हों तो··· (**गिलास उठाकर**) तारा···तारा···माँ··· (**एक बड़ी-सी घूँट लेता है**)
लड़की : (**रोती-सी आवाज में**) पगला घोड़ा ! जरा मेरी ओर आओ न ! पुकारकर कहो न कि—छोड़ रास्ता खड़ी हो बीवी ! मैं क्या बीवी नहीं हूँ ? मैं क्या बीवी नहीं हो सकती ? ···मैं क्या इस आग में जलते-जलते नहीं कह सकूँगी कि···पगला घोड़ा···आल राइट···वेरी गुड ??

लड़की अन्धकार में खो जाती है। बाद की बातें अँधेरे में ही उसकी रुलाई में डूब-सी जाती हैं।

सातू : (**जरा देर बाद**) क्या हुआ ? सब लोग अचानक एकदम चुप हो गये ?
कार्तिक : सोच रहा हूँ।
सातू : क्या सोच रहे हैं ? जीवन-मरण की बात ?
कार्तिक : हाँ भी और नहीं भी।
सातू : मतलब ?
कार्तिक : अभी फिलहाल इस लड़की की बात सोच रहा था।
सातू : इस लड़की···ओ, माने इस लड़की की ?
कार्तिक : हाँ।
सातू : इस लड़की का किस्सा किसी तरह पूरा नहीं हो पा रहा है।
कार्तिक : कहाँ तक सुन चुके हैं ?
सातू : वह भी तो ठीक से याद नहीं। बाप को लकवा मार गया—शायद यही तक तो सुना था।
कार्तिक : हाँ, वह आज चार साल से लकवा में पड़ा है। लड़की के ससुराल जाने के कुछ दिन बाद ही लकवा मार गया था।
सातू : (अवाक् होकर) ससुराल ? लड़की की शादी हो चुकी थी ?
कार्तिक : बाकायदा मन्त्रपाठ वगैरह करके साबित दस्तूर सब हुआ था।
सातू : तो वह विधवा···?
कार्तिक : ना। (**आवेगहीन व्यंग्य**) विधवा क्यों होगी ? सधवा···सधवा।

सातू : पर···सिन्दूर-विन्दूर तो कुछ नहीं देखा ? सधवा के मरने पर तो उसे सिन्दूर से रँग देते हैं···

कार्तिक : उसे कौन रँगता ? और रँग देने से ही क्या होता ?

सातू : उसके पति कहाँ हैं ?

कार्तिक : पति ? हाँ, मन्त्र पढ़कर ब्याह हुआ था तो पति तो है ही। आज कहाँ है, नहीं मालूम। किसी पागलखाने में भी हो सकता है—घर में भी ताले-चाभी में बन्द हो सकता है। बहुत बड़ा मकान है, कोई परेशानी न होती होगी।

सातू : आइ सी।

कार्तिक : उनके घर एक ज्योतिषी आया करता था—सच पूछो तो उसकी परवरिश उन्हीं के यहाँ से होती थी। उसी ने गणना करके बताया था, ब्याह हो जाने से लड़का ठीक हो जायेगा। ब्याह के दिन तक लड़के का पता था, पर उसके बाद वह न जाने कहाँ गायब हो गया—लड़की ने उसे देखा ही नहीं। सुहागरात के दिन भी वह लापता था।

शशि : (अचानक) अच्छा, उस ज्योतिषी की नौकरी अभी भी बनी है ?

कार्तिक : हाँ, शायद। अरे भाई, उसने कह दिया कि लड़की कुलक्षणी है तो वह क्या करे ? बात खत्म। अब शायद दूसरी सुलक्षणी ढूंढ़ रहा होगा।

शशि : आपको इतनी सब बातें कहाँ से पता चलीं ?

कार्तिक : हमारे डाक्टरखाने में जितने मरीज आते हैं न, उनमें बकबक करने की बीमारी सभी को होती है।

सातू : उसके बाद क्या हुआ ?

कार्तिक : तीन साल तक ससुराल में कैद रहने के बाद एक दिन रात में वह भाग आयी। ससुराल से मिले गहने को देकर उसने एक दरबान को पटा रखा था। उसी ने सब इन्तजाम करके उसे यहाँ पहुँचा दिया। वह दरबान अब रिटायर करके जमीन-जायदाद की देखभाल करता है। गहना कम नहीं था। जो उसने पहले नहीं दिया था वह भी रात के समय गाँव के पास आने पर दरबान ने छीन लिया। इनाम के तौर पर और क्या ?

सातू : बड़ा होशियार आदमी था ! फिर ?

कार्तिक : यहाँ आकर लड़की ने देखा, बाप खाट पकड़े है, मकान की हालत खस्ता हो चुकी है। खाने-पीने का जुगाड़ यदि हो जाता है तो वह मलिक बाबू की दया से।

सातू : ओ ! इतनी देर के बाद मलिक बाबू का प्रवेश होता है। वही रहस्य

की बात का।

कार्तिक : हाँ, वही रहस्य। मलिक बाबू ने इसी आशा में बुड्ढे को जिलाये रखा था कि कौन जाने किसी दिन लडकी लौटे ही···! खर्च ज्यादा तो नहीं था, पोसा जाता था।

लड़की का प्रवेश

सातू : अब समझ में आ गया···ज्यादा कहने की जरूरत नहीं है। पर वह मरी कैसे ? एबौरशन था क्या ?

कार्तिक कर्कश स्वर में हँस पड़ता है।

कार्तिक : वैसा होता तो भी कहता अच्छा हुआ। समझ में आता कि हाँ, मरने की कोई सार्थकता हुई।

लड़की : चुप रहो। चुप रहो···बस करो···एकदम चुप !

सातू : माने ?

कार्तिक : मलिक में वह सामर्थ्य ही नहीं है। रुपये खर्च करके भी नहीं रख सका। उसे लड़कियों की जरूरत खाली हल्के-से मन-बहलाव के लिए थी।

लड़की : (दोनों हाथ से कान ढककर) चुप करो···

हिमाद्रि लौटता है।

हिमाद्रि : बस घण्टा-भर और लगेगा।

सब चुप रहते हैं। हिमाद्रि बैठता है।

कार्तिक : तारा···तारा···माँ।

लड़की : घण्टा-भर और। बस···एक घण्टा और। पगला घोड़ा—क्या एक बार भी मेरी ओर देखने की फुरसत तुम्हें नहीं मिलेगी ? मैं क्या मालती नहीं हूँ ? मिलि नहीं हूँ ? लछमी नहीं हूँ ?

साथ ही साथ कुत्ता जोर से रो उठता है। सातू चौंककर एकदम से उछल पड़ता है। गिलास की शराब छलक पड़ती है।

सातू : कौन ?

हिमाद्रि : कुत्ता फिर आ गया है।

सातू : ऐं···हाँ···हाँ···कुत्ता। फिर आ गया है।

सातू का हाथ काँप रहा है। लड़की उसकी ओर देख रही है।

लड़की : **(फुसफुसाकर)** लछमी !

कार्तिक : **(हँसकर)** कुत्ते का रोना आपको बहुत नापसन्द है !

सातू : **(लज्जित हँसी)** नहीं—माने इसका चीखना मुझे···एकदम···

लड़की : **(फुसफुसाकर)** लछमी।

सिर पर हाथ फेरकर सातू बैठता है। गिलास में शराब ढालता है।

सातू : (अचानक) कुत्ते जैसा नमकहराम कोई दूसरा जीव नहीं होता।

कार्तिक : यह आप क्या कह रहे हैं ? लोग तो उल्टी बात कहते हैं।

सातू : लोग खाक जानते हैं। एक कुत्ता था···रोज हमारे यहाँ—माने मेरे यहाँ···आता था···दोनों वक्त उसे खाना देता था···

लड़की : तुम खाना देते थे ? तुम देते थे ?

सातू : मतलब जो भी रहता था, दे दिया जाता था। ऐसे ही था बाजारू, किसी खास जात-वात का नहीं था। पर बस, उससे मोह हो गया था और क्या !

लड़की : मोह हो गया था ? तुम्हें ?

सातू : सो ऐसा नमकहराम निकला कि पूछिए मत। दो साल बाद मिला तो उसने पहचाना ही नहीं। उल्टे काटने दौड़ा।

शशि : वाह, सातू बाबू। कुत्ते के साथ दो साल बाद मुलाकात होना, उसका पहचान न पाना···

सातू : (लज्जित हँसी) नहीं···लोग कहते हैं न कि कुत्ता बहुत दिनों तक पहचानता रहता है इसीलिए···

लड़की : तुम गलत कह रहे हो। वह तुम्हें ठीक पहचानता था। एकदम ठीक पहचानता था। नहीं ?

सातू : (**बदन झकझोरकर, बनावटी फुर्ती से**) क्यों, एक बाजा ट्वेन्टीनाइन और होगी ?

शशि : नहीं, ताश में अब मन नहीं लग रहा है !

सातू : तो कोई बढ़िया-सी मजेदार प्रेम-कहानी छेड़िए न ?

लड़की : हाँ···हाँ···वही करो।

कार्तिक : प्रेम-कहानी यहाँ कौन छेड़ेगा ?

सातू : हिमाद्रि बाबू, आपकी ही तो इस सबके लायक उम्र है। शुरू कीजिए न।

हिमाद्रि : उम्र से क्या होता है सातू बाबू ! शशि दा ने कहा न कि बंगाली लड़कों में प्रेम करने की सामर्थ्य ही नहीं होती।

शशि : अरे भाई, तो तुम मेरी बात को झूठी ही साबित कर दो, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

हिमाद्रि : सो कैसे कर सकता हूँ। आप गुरुजन ठहरे।
शशि : क्या कहना है गुरु-भक्ति का।
हिमाद्रि : फिर बात झूठी भी तो नहीं है।
सातू : ओफ्फोह…न हो तो गढ़कर ही कोई किस्सा सुना डालिए।
कार्तिक : (अचानक) ऐं, गढ़कर किस्सा सुनाने से चलेगा ? तब तो मैं भी चान्स ले सकता हूँ।
सातू : लीजिए न…हम सब सुनने को तैयार बैठे हैं।
कार्तिक : (जरा देर सोचकर) बहुत दिनों पहले एक कहानी सुनी थी— जिसने सुनायी थी वह सच्ची बात कह रहा था या गढ़कर, मुझे पता नहीं। वैसे उसने अपनी ओर से इसे सच्ची घटना ही कहा था।
सातू : सच-झूठ बाद में तै कर लेंगे। आप सुनाइये न।
लड़की : तुम्हारी भी कोई कहानी है ? सच ? मुझे तो नहीं पता ? बतला सकते हो, क्यों ?…तुम्हारा किस्सा मुझे एकदम नहीं मालूम।
कार्तिक : कहानी सुनी थी एक मोची से।
सातू : मोची से ?
कार्तिक : हाँ। क्यों, मोची प्रेम नहीं कर सकता ?
सातू : नहीं…नहीं…। कर क्यों नहीं सकता ? अलबत्ता कर सकता है।
शशि : हम लोगों के मिनमिन-मिनमिन भद्र प्रेम से तो मोची का प्रेम ही कहीं जोरदार रहा होगा। क्यों कार्तिक बाबू ?
कार्तिक : यदि आप ऐसा मान बैठे हैं तब तो आपको निराश होना पड़ेगा।
सातू : आप सुनाइए न।
कार्तिक : एक बहुत बड़े मकान के सामने बैठकर मोची रोज जूता सिलाई करता था। मकान में बहुतेरे लोग आया-जाया करते थे…जूते की मरम्मत भी करवाते थे। मोची रोज ही हर तरह के लोगों को देखा करता था।
लड़की : यह क्या तुम्हारी कहानी है ? तुम्हारी कहानी है ?
कार्तिक : उन्हीं आने-जानेवालों में एक दस-बारह साल की लड़की भी थी… बराबर आया करती थी। कभी-कभी जूता भी सिलवाती थी…एकाध बातचीत भी करती थी…फिर चली जाती थी। जितने लोग आते थे उनमें इस लड़की को ही…माने इस लड़की का ही वह इन्तजार किया करता था।
सातू : जरा रुकिए तो। आपके उस मोची की उम्र क्या रही होगी ?
कार्तिक : (हँसकर) उम्र काफी थी। चालीस-पचास रही होगी।
शशि : ओ…तो वात्सल्य प्रेम था ?

कार्तिक : प्रेम था भी या नहीं, इसका फैसला तो हो लेने दो। तुम तो पहले से ही वात्सल्य-वात्सल्य करने लगे।

सातू : हाँ-हाँ—सुनाइए।

कार्तिक : इसी तरह दिन बीतने लगे। महीने और साल भी बीत चले। बाद में काफी-काफी दिन बाद लड़की आती। और आती भी तो मोची की ओर खास ध्यान न देती। मोची की बड़ी इच्छा करती कि पुकारकर उससे दो बातें करे पर साहस नहीं कर पाता था।

हिमाद्रि : क्यों, साहस क्यों नहीं कर पाता था ?

कार्तिक : अरे भाई, इस बीच सालों गुजर गये थे। लड़की पहले जैसी बच्ची थोड़े ही रह गयी थी।

शशि : तो उससे क्या हुआ ? बात करने में किसी को क्या एतराज हो सकता है ?

कार्तिक : यही तो असल बात है। किसी के एतराज की बात न होते हुए भी मोची को साहस नहीं होता था। इसका मतलब क्या हुआ ?

हिमाद्रि : आपके कहने का मतलब यह कि उसके अपने मन में···

कार्तिक : हाँ···हिमाद्रि, हाँ। उसके मन में क्या था, इसे वह खूब अच्छी तरह जानता था। जितना ही समय गुजरता जाता था, उतना ही वह इस बात को और अच्छी तरह समझता जाता था। चौबीसों घण्टे वह लड़की ही उसके दिमाग में घूमती रहती थी···उठते-बैठते, सोते-जागते, हर समय। असल में उस मोची के माँ-बाप, भाई-बहन, घर-परिवार कुछ भी नहीं था। बिचारा एकदम अकेला था। बाहर से जैसा अकेला था वैसा ही सूना उसका मन था। सो उस सूने मन में उस लड़की ने अच्छी तरह डेरा जमा लिया था।

सातू : मतलब खाली घर पाकर पूरे पर अधिकार जमा लिया।

कार्तिक : अधिकार जैसा अधिकार ! साल पर साल बीतते गये—उसका ऐसा एकछत्र राज्य रहा कि और कोई पास ही न फटक पाया। पर उससे क्या हुआ। भरा होते हुए भी मोची का मन खाली ही रह गया। उससे बातचीत तक होने का हिसाब नहीं था, और कुछ की तो बात ही क्या ! उस बेचारे पर क्या गुजरती रही होगी, समझ सकते हैं ?

सातू : तो फिर उसने मन को जबरन दूसरी ओर लगाने की कोशिश क्यों नहीं की ?

कार्तिक : बुद्धू था बुद्धू। यार-दोस्तों को जुटाकर हो-हल्ला कर सकता था, इधर-उधर मौज-मस्ती ले सकता था, पर ना···उसने तो उस लड़की

के नाम पर कसम खा रखी थी न, सो उसी की याद में डूबा रहता।

सानू : क्यों ?

लड़की : यह किसकी कहानी है ? मुझे तो कुछ भी याद नहीं पड़ता।

कार्तिक : क्यों ? बात सीधी-सी है, फिर भी समझना आसान नहीं है। लड़की की याद उसे बेचैन अवश्य करती थी पर उस बेचैनी के साथ उसे कुछ और भी दे जाती थी जिसकी कीमत बेचैनी से कहीं अधिक थी।

लड़की : उसका मन भर देती थी न ? उसके सूने मन को भर देती थी न ? मैं समझ रही हूँ। जानती नहीं पर समझ रही हूँ।

हिमाद्रि : समझा।

कार्तिक : समझे ?

लड़की : पच्छिम की खिड़की से दिखनेवाला वह सतरंगा आकाश···कितना बेचैन कर देता था···न जाने कितना। कुछ पाने को मन को व्याकुल कर देता था, कितनी तकलीफ देता था फिर भी मन कैसा भर देता था। आज भी भर देता है इसीलिए उसके लिए इतनी बेचैन रहती हूँ।

सानू : इसके बाद ?

कार्तिक : इसके बाद अचानक लड़की का आना बन्द हो गया। बहुत दिनों तक आसरा देखने के बाद उसने बड़ी सावधानी से उसकी खोज-खबर लेनी शुरू की। जो डर था, वही निकला।

शशि : लड़की की शादी हो गयी ?

कार्तिक : हाँ। हम बंगालियों के घिसे-पिटे, सड़े प्रेम की ट्रेजेडी।

हिमाद्रि : किस्सा पूरा हो गया ?

कार्तिक : ना, अभी और है। पर आगे की घटना सच्ची है या मोची की अपनी कल्पना, कह नहीं सकता। उसके कहे अनुसार लड़की ब्याह करके सुखी नहीं थी। उसके पति के साथ उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं था।

सानू : क्यों ?

कार्तिक : क्या पता ? जरूर कोई बात रही होगी। हम लोगों के यहाँ तो ऐसा अवसर ही होता रहा है। इसी लड़की का किस्सा लीजिए न।

लड़की : पर मेरे साथ तो ऐसा नहीं हुआ था—मैंने तो किसी का खाली मन नहीं भरा।

हिमाद्रि : क्यों ?

कार्तिक : इसके बाद का किस्सा ठीक से याद नहीं है—लड़की विधवा हो

गयी या ससुरालवालों ने निकाल दिया या वह खुद ही भाग आयी, याद नहीं।···कहानी बहुत दिनों पहले सुनी थी न, इसलिए भूल रहा हूँ। सीधी बात यह कि कई साल बाद एक बार मोची के साथ उसकी फिर भेंट हुई···भेंट हुई माने मोची ने उसे देखा।

सातू : अब किस्सा रंग लायेगा।

कार्तिक : (हँसकर) नहीं सातू बाबू, रंग लाने लायक इसमें कुछ नहीं है। वह तो जैसे पहले उसे देखा करता था, वैसे ही अब भी देखता रहा। हाँ, इतना उसे जरूर समझ में आया कि इन सालों में तनिक भी दूर जाने की कौन कहे, यह लड़की उसके मन में और गहरे उतर गयी है।

कार्तिक रुकता है।

सातू : क्या हुआ ? रुक क्यों गये ?

कार्तिक : इसके बाद क्या हुआ, मुझे नहीं मालूम। उस मोची से फिर मुलाकात ही नहीं हुई।

हिमाद्रि : वाह कार्तिक दा, ऐसी जगह पर किस्से को लाकर कहीं छोड़ा जाता है।

कार्तिक : हाँ, इस किस्से को शुरू ही नहीं करना चाहिए था। नशे की झोंक में लगा था कि खूब जमेगा। पर अब लगता है कि किस्से में कुछ दम नहीं है।

लड़की : कौन कहता है, दम नहीं है ? दम है। बड़ी सुन्दर कहानी है।

कार्तिक : (**गिलास बढ़ाते हुए**) क्यों जनाब। तारा···तारा माँ···!

सातू ढालता है।

इतनी देर बाद अब नशा कुछ जम रहा है।

सातू : हाँ, मेरा भी।

हिमाद्रि उठकर खड़ा होता है।

बाहर जा रहे हैं क्या ?

हिमाद्रि : ना।

खिड़की के पास जाकर खड़ा होता है।

लड़की : मिलि की बात सोच रहे हो ?

शशि : कार्तिक दा बड़ी फालतू बातें करते हैं।

स्पष्ट है कि नशे में होने पर शशि झगड़ालू हो उठता है। कार्तिक सातू की ओर देखकर आँख मारकर हँसता है।

कार्तिक : मैंने कौन-सी बात फालतू की ?
शशि : **(शिकायत के स्वर में)** खाली मन भरा है। मन नहीं भरा है—घण्टा।
कार्तिक : प्रेम-कहानी सुनकर आपका मिजाज गरम हो गया है ?
शशि : प्रेम-कहानी ? वह प्रेम था ?
कार्तिक : और नहीं तो क्या ?
सातू : अच्छा। पहले यह बतलाइए कि प्रेम होता क्या है ?
लड़की (हिमाद्रि से) तुम बतला दो न ! मिलि की कहानी ! इन लोगों से कह दो न !
हिमाद्रि : **(बिना मुड़े)** प्रेम ! प्रेम वह है जो आकाश-पाताल के कुलाबे मिलवाता है, बेचैन करता है, तकलीफ देता है, फिर कुछ ऐसा उलटा-पलटा काम करवाता है कि सबकुछ जलकर राख हो जाता है।
लड़की : केवल जलाता है ? जुड़ाता नहीं ?

कार्तिक हो-हो करके हँस पड़ता है और मोटे बेसुरे स्वर में गा उठता है—

कार्तिक : "कहीं जानता पहले ही सखि, ज्वाला इतनी प्रेम में···"
लड़की : प्रेम में केवल ज्वाला है ? केवल ज्वाला ? और कुछ नहीं है ?

सब चुप रहते हैं। तीनों आराम से बैठे झूम रहे हैं। हिमाद्रि अचानक फिरकर अपने गिलास से एक घूँट पीता है। उसका मुँह विकृत हो उठता है। और लोग उस ओर ध्यान नहीं देते।

तुम शराब पी रहे हो। जीवन में पहली बार तुमने आज शराब पी है। याद है जिस दिन तुमने पहली बार मिलि को···
हिमाद्रि : **(विह्वल स्वर में)** मिलि···

लड़की मिलि बनकर खड़ी होती है। हिमाद्रि धीरे-धीरे उसके पास आता है।

हिमाद्रि : मिलि।
मिलि : क्या है ?

हिमाद्रि और पास आता है। मिलि को ध्यान से देखता है मानो कुछ जानना चाह रहा हो। मिलि की आँखों में भय है।

क्या बात है हिमाद्रि ? बोलो !

हिमाद्रि : तुम कहाँ गयी थीं ?
मिलि : डॉली के घर। क्यों ?
हिमाद्रि : बड़ी रात हो गयी है न ?
मिलि : बड़ी रात ? माने ?
हिमाद्रि : बारह बज रहा है। तुम्हारे ममी-डैडी सब सो चुके हैं।
मिलि : (**बनावटी स्वाभाविकता से**) अच्छा ? तो क्या हुआ ? मैं तो खाकर आयी हूँ। मैं कह ही गयी थी कि मुझे देरी होगी। डॉली की बर्थ-डे पार्टी थी न !
हिमाद्रि : ओ ! पार्टी थी।
मिलि : (**हल्की हँसी**) पार्टी मतलब, दो चार घनिष्ठ इष्ट-मित्र थे।··· तुम अभी तक जग रहे हो ?

मिलि आँचल से मुँह ढँककर बातें कर रही है।

हिमाद्रि : मैं पढ़ रहा था।
मिलि : ओ ! अच्छा गुडनाइट। चलूँ सो जाऊँ, बड़ी नींद आ रही है।

जाने लगती है

हिमाद्रि : मिलि, सुनो।
मिलि : (**वहीं रुककर**) क्या ?
हिमाद्रि : इधर आओ जरा।

मिलि धीरे-धीरे पास आती है।

क्या बात है, बोलो तो ?
मिलि : क्यों ? क्या हुआ ?
हिमाद्रि : जानती हो, घर में सब लोग सो गये हैं ?
मिलि : हाँ— तो क्या हुआ ?
हिमाद्रि : (**जरा हँसकर**) ऐसे समय तुम मुझसे गुडनाइट करके, इस तरह भागी जा रही हो·· इससे ताज्जुब हो रहा है।
मिलि : (**सिर नीचा करके**) मैं बहुत थक गयी हूँ। मैं···

हिमाद्रि हठात् मिलि का मुँह दोनों हाथों से पकड़कर ऊपर करता है। मिलि के मुँह छुड़ाने से पहले ही हिमाद्रि झुककर लम्बी साँस लेता है और फिर चौंककर पीछे हट जाता है। मिलि डर जाती है।

हिमाद्रि : मिलि—मिलि—तुमने शराब पी है ?

मिलि : किसने कहा ?

हिमाद्रि : इसी डर से भाग रही थीं ?

मिलि : हिमाद्रि···मैं···पार्टी में···जरा-सी भी न लेती तो बड़ी अभद्रता होती···

हिमाद्रि : अभद्रता ? शराब न पीना अभद्रता है ?

मिलि : इसे शराब पीना नहीं कहते हिमाद्रि। डॉली के ऑनर में एकाध ड्रिंक ले लेना···न लेने से डॉली···

हिमाद्रि केवल देखता रहता है। मिलि डर के मारे बेचैन हो जाती है।

मैं नहीं जाना चाह रही थी···मैंने बहुत ना किया···पर वे लोग···जबर-दस्ती मुझे।

हिमाद्रि : जबरदस्ती तुम्हें···?

मिलि : अक्सर ही इस तरह जबरदस्ती करते हैं···माने न पीने से ऐसी आफेन्स मानते हैं कि···हिमाद्रि···प्लीज़···तुम···

हिमाद्रि घूम जाता है। मिलि उसे जबरदस्ती अपनी ओर घुमाती है। दोनों हाथों से उसे कसकर पकड़कर वह बच्चों की तरह अनुनय करती है।

मैं अब फिर कभी नहीं पीऊँगी···कभी नहीं···गॉड प्रामिस हिमाद्रि··· गॉड प्रामिस (**बहुत जोर से बोल गयी थी—फिर सम्हलकर धीरे से**) कभी भी नहीं···हिमाद्रि···प्लीज, तुम गुस्सा मत हो हिमाद्रि···प्लीज़।

हिमाद्रि : (**शान्त स्वर में**) मेरे गुस्सा होने, न होने से क्या आता-जाता है मिलि ? तुम्हारी सोसाइटी में जो करना जरूरी है, उसे तुम मेरी खातिर क्यों···

मिलि : (**करुण स्वर में**) हिमाद्रि। ऐसे मत कहो। तुम जानते हो कि ऐसे कहने के बजाय यदि तुम मेरे गाल पर दो चाँटे मारो तो मेरे लिए ज्यादा अच्छा हो···

हिमाद्रि : (**अचानक, जिज्ञासा के स्वर में**) मिलि, तुम्हारी ऐसी बातें सुनकर तो लगता है कि तुम मेरे तनिक-से गुस्से से भी बहुत-बहुत डरती हो। पर···

मिलि : सच···मैं बहुत डरती हूँ···

हिमाद्रि : पर पार्टी में, अपनी सोसाइटी में तुम्हें मेरी बात एकदम भूल जाती है ? कुछ भी याद नहीं रहता···

मिलि : कौन कहता है ?

हिमाद्रि : उस समय तुम मेरे अच्छा या बुरा लगने की रत्ती-भर भी परवाह नहीं करतीं। तुम्हारी नजरों में उसकी कानी कौड़ी भी कीमत नहीं होती। मानो तुम्हारे जीवन में मेरा कोई अस्तित्व ही न हो।

मिलि : (**हिमाद्रि के मुँह पर हाथ रखते हुए**) नहीं···ऐसा मत कहो। तुम नहीं जानते···तुम मेरे लिए क्या हो।···तुम समझ नहीं पा रहे हो··· तुम्हें जानने के बाद से मेरी इतने दिनों की जिन्दगी—यह टेनिस, स्विमिंग, ड्राइविंग, पार्टी, पिकनिक···यह सब···

हिमाद्रि : किन्तु तुम यही सब तो चाहती हो मिलि ! इसीलिए आज पार्टी में जाकर ड्रिंक किये बिना तुमसे नहीं रहा गया···

मिलि : मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ हिमाद्रि। मुझे थोड़ा समय दो···लगता है···पता नहीं···आज मुझे कुछ नहीं समझ में आ रहा है···कल शाम को तुम्हारे साथ बाहर चलूँगी···नाराज मत हो हिमाद्रि···तभी···तभी सबकुछ समझाकर कहने की कोशिश करूँगी। चलोगे न ? बोलो, चलोगे न ?

हिमाद्रि चुप रहता है।

बोलो न, चलोगे तो ?

हिमाद्रि : ठीक है, चलूँगा।

मिलि : हिमाद्रि···गुस्सा मत हो···प्लीज़। तुम गुस्सा रहोगे तो मैं सो नहीं पाऊँगी। कल दिन-भर मुझे एक पल के लिए भी चैन नहीं मिलेगा। बोलो···

हिमाद्रि : तुम भी मुझे कुछ समय दो मिलि। इतनी जल्दी मैं भी कुछ नहीं कह सकता।

मिलि धीरे-धीरे हाथ छोड़ देती है।

मिलि : अच्छा···अच्छा। कल शाम को चलोगे न ?

हिमाद्रि : हाँ।

मिलि दोनों हाथ उठाकर हिमाद्रि की ओर बढ़ती है, फिर रुककर दो कदम पीछे हटकर, मुड़कर जल्दी से चली जाती है।

सातू : (**रुँधे स्वर में**) ना···यह ज्वाला···

रुक जाता है।

कार्तिक : (**जरा देर बोलने की प्रतीक्षा करके**) काहे की ज्वाला ?

सातू : यही, आप लोगों के प्रेम की।

कार्तिक : (फिर रुककर) क्यों, क्या हुआ ?
सातू : यह ज्वाला आती कहाँ से है ?
शशि : जिन लोगों ने प्रेम किया है उनकी बेवकूफियों से ।
सातू : (सोचकर) मतलब—प्रेम बेवकूफ लोग ही करते हैं ?
शशि : नहीं···प्रेम करके लोग बेवकूफ बन जाते हैं ।
सातू : (सोचकर) आइ सी ।

हिमाद्रि इस बीच लौटकर अपना गिलास खाली कर चुका है । और ढालता है । गिलास को देखता रहता है ।

शशि : हँह, आइ सी ।
सातू : (सोचकर) क्यों, क्या हुआ ?
शशि : आप कभी प्रेम में पड़े भी हैं जो 'सी' कीजिएगा ?
सातू : (सोचकर) ना, सो नहीं पड़ा (जरा देर बाद) पर···लछमी···उसका किस्सा···
कार्तिक : लछमी ?
शशि : लछमी कौन है ?
सातू : एक लड़की (जरा रुककर) मर गयी ।
शशि : चलो बला टली ।
कार्तिक : आह···शशि बाबू···

शशि चुप रहता है । सातू भी कुछ नहीं कहता । हिमाद्रि अचानक अपने-आप ही खी-खी करके हँसने लगता है ।
तुम्हें क्या हुआ, हिमाद्रि ?

हिमाद्रि : देखिए, कैसे प्रेम से पी रहा हूँ—बिना पानी मिलाये नीट शराब···क्या है, ह्विस्की ?
कार्तिक : हाँ ।
हिमाद्रि : अच्छा, शराब पीने में क्या बुराई है ?
कार्तिक : यह सवाल पूछने के लिए तुम्हें और कोई नहीं, मैं ही मिला भैया ?

लड़की पर रोशनी पड़ती है ।

हिमाद्रि : पर ज्यादा पीना ठीक नहीं है ।

हिमाद्रि की आँखें कहीं बहुत दूर लगी है । धीरे-धीरे गिलास नीचे रखता है ।

कार्तिक : क्यों ?
हिमाद्रि : ज्यादा पी लेने पर टहलना चाहिए।
शशि : टहलना चाहिए ?
लड़की : आखिरी दिन की बात याद आ रही है ? आखिरी दिन की ?
हिमाद्रि : गाड़ी नहीं चलानी चाहिए।
शशि : गाड़ी नहीं चलानी चाहिए ?
कार्तिक : ओ ! तो फिर मुझे कोई चिन्ता नहीं है। गाड़ी है नहीं सो···

निश्चिन्त भाव से चुसकी लेता है।

हिमाद्रि : (**बड़बड़ाते हुए**) ऐसा नहीं होगा ! ऐसा नहीं हो सकता।

कोई ध्यान नहीं देता। लड़की मिलि हो जाती है। आँखें सूनी हैं। हिमाद्रि पास आता है।

ऐसा नहीं होता मिलि ! ऐसा नहीं हो सकता। दो सालों से बहुत बार बहुत तरह से कोशिश करके देख चुका हूँ···यह होनेवाला नहीं है।
मिलि : (**सूने भाव से**) मैं तुम्हें एकदम अच्छी नहीं लगती।
हिमाद्रि : नहीं, मिलि, नहीं। तुम जानती हो यह बात नहीं। मैंने चेष्टा करने में कुछ भी नहीं उठा रखा···
मिलि : चेष्टा ? हाँ, तुमने चेष्टा की है पर मुझे एकदम बदल देने की··· अपने समाज, अपने जीवन में एकदम मुझे मिला देने की, उसमें एकदम ढाल देने की। इसमें तनिक-सा इधर-उधर होने पर तुमने मुझे दूर कर दिया।
हिमाद्रि : मिलि।
मिलि : कुत्ते की तरह मुझे दुरदुरा दिया। कुत्ते की ही तरह मैंने फिर से तुम्हारे पास आने की चेष्टा की···बार-बार···मैंने तुमसे भीख माँगी ···पर तुमने एक बार भी मेरे जीवन, मेरी परिस्थितियों को समझने की चेष्टा नहीं की।
हिमाद्रि : नहीं की ?
मिलि : कब की ? तुमने मेरी कोई भी बात नहीं सही, किसी भी बात के लिए मुझे माफ नहीं किया। क्यों करोगे ? तुमने तो कभी मुझे प्यार नहीं किया···
हिमाद्रि : यह झूठ है मिलि, तुम जानती हो। तुम्हारे और मेरे जीवन, रहन-सहन मे इतना बड़ा अन्तर है कि···
मिलि : जीवन···रहन-सहन···अन्तर।···तुम्हारे लिए तुम्हारा जीवन और

रहन-सहन ही सबकुछ है। मैं कुछ नहीं हूँ। तुम्हें मेरी कोई जरूरत नहीं है।

हिमाद्रि : (जरा रुककर) तुम जब कुछ समझना ही नहीं चाहतीं, तो मैं चलूँ।

मिलि : (बिजली की तरह खड़ी होकर) कहाँ जाओगे ?

हिमाद्रि : तुमसे मतलब !

मिलि : नहीं। तुम कहीं नहीं जाओगे। मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी।

हिमाद्रि : (अपमानित होकर) मिस राय, आपके डैडी की नौकरी से मैंने इस्तीफा दे दिया है। मेरा सूटकेस बाहर के कमरे में रखा है। आपके साथ शायद फिर मुलाकात न हो। आप लोगों ने मुझ पर जो कृपा की, उसके लिए आभारी हूँ। धन्यवाद। नमस्कार।

हर बात हथौड़े की चोट की तरह मिलि को पीड़ा पहुँचाती है। हिमाद्रि जाने को घूमता है। मिलि दोनों हाथ से सिर पकड़कर चलने की कोशिश करती है। हठात् रुककर--

मिलि : हिमाद्रि।

हिमाद्रि : बोलिए, मिस राय।

मिलि : (कष्ट को छिपाते हुए) तुम जानते हो कि मैं तुम्हारे घर जाऊँगी··· तुम जानते हो कि मैं फिर से···

हिमाद्रि : उससे कोई लाभ न होगा। बार-बार मुझसे यह सब नहीं सहा जाता। इसलिए इस बार मन एकदम पक्का कर लिया है। दूसरा इन्तजाम भी कर रखा है।

मिलि : (डरी-सी) क्या मतलब ?

हिमाद्रि : मतलब, मेरे घर जाने से कोई लाभ न होगा। मैंने मकान बदल दिया है। वह जगह तुम्हें खोजे भी न मिलेगी।

मिलि : क्या तुम हमेशा के लिए मुझे अपने से दूर कर देना चाहते हो ?

हिमाद्रि : नहीं, मैं खुद दूर चला जा रहा हूँ।

मिलि : हाँ, जाओ। तुम्हें क्या ! तुम्हारी जिन्दगी खूब मजे में कटेगी। तुम्हारी अपनी दुनिया है।

हिमाद्रि : तुम्हारी भी तो अपनी अलग दुनिया है।

मिलि : नहीं, मेरी अब कोई अपनी दुनिया नहीं है। तुम्हारी दुनिया को मैं पूरी तरह नहीं स्वीकार कर सकी, यह सही है, पर अपनी दुनिया मैंने खो दी है। वैसे तुम्हें इससे क्या फर्क पड़ता है।

हिमाद्रि : (जरा रुककर) मैं चलूँ।

मिलि : हिमाद्रि, अपना पता दे जाओ।

हिमाद्रि : ना।

मिलि : मैं वहाँ जाऊँगी नहीं। मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि पूरी तरह तुम्हारे अनुरूप अपने-आपको ढाले बिना, मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।···बस, तुम अपना पता बता जाओ।

हिमाद्रि : नहीं। चलूँ···

मिलि : हिमाद्रि। (हिमाद्रि उसकी ओर देखता नहीं। गला दबाकर उन्मत्त से स्वर में) ठीक है, तुम यदि मुझे पता दिये बिना ही चले जाओगे तो मैं ह्विस्की मँगाकर पीयूँगी—और पीती ही रहूँगी···तब तक जब तक कि मैं जलकर राख नहीं हो जाऊँगी···

हिमाद्रि : कांग्रेचुलेशन्स मिस राय। आपकी दुनिया बनी रहे।

हिमाद्रि खिड़की की ओर चला जाता है। मिलि अँधेरे में गायब हो जाती है।

हिमाद्रि खिड़की में घूमकर खड़ा होता है। उसकी आँखों में विह्वल पीड़ा का भाव है। अचानक आगे आकर सातू और शशि का कन्धा पकड़कर झकझोरने लगता है।

सातू बाबू! शशि दा! सुना! ज्यादा पीकर कभी भी गाड़ी मत चलाएगा। ज्यादा पीकर चलाने से न, जोर से चलाने की इच्छा करती है···ज्यादा पी लेने पर होश-हवास तो दुरुस्त रहता नहीं। खूब जोर से चलाने का मन करता है—पचास मील—साठ मील—पैंसठ मील—और फिर···उसके बाद···

हिमाद्रि हाँफने लगता है।

उसके बाद पेड़ से धक्का लगकर गाड़ी चकनाचूर हो जाती है···शरीर चिथड़े-चिथड़े हो जाता है—ऐसा कि पहचाना भी न जा सके—शशि दा, एकदम भुरकुस···ओह! क्यों? क्यों? मैं···

इस बीच शशि और सातू उठकर हिमाद्रि को पकड़ते हैं। कार्तिक भी उठता है।

सब : हिमाद्रि, हिमाद्रि! क्या हुआ? बैठो—बैठो—

हिमाद्रि और जोर से बोले जाता है।

हिमाद्रि : क्यों? क्यों मैंने···? क्यों···?

शशि-कार्तिक : बैठो हिमाद्रि, बैठो।
सातू : यह लीजिए···एक घूँट पीजिए तो।

सातू जबरदस्ती उसे एक घूंट पिलाता है। हिमाद्रि खाँसने लगता है। फिर अचानक शान्त हो जाता है।

हिमाद्रि : (भरे-भरे स्वर में) एक्सीडेंट था शशि दा···एक्सीडेंट···स्यूसाइड नहीं। स्यूसाइड क्यों होगी। एक्सीडेंट। हाँ न?

कोई उत्तर नहीं देता। हिमाद्रि थका हुआ-सा बैठा रहता है। शशि और कार्तिक अपनी-अपनी जगह जाकर बैठ जाते हैं। सातू दरवाजे पर जाकर खड़ा होता है। लड़की पर रोशनी पड़ती है।

लड़की : आम का पत्ता जोड़ा-जोड़ा। मारा चाबुक दौड़ा घोड़ा। छोड़ रास्ता खड़ी हो बीवी। आता है यह पगला घोड़ा। पगला घोड़ा···

अचानक खिलखिलाकर हंस पड़ती है।

(हँसते-हँसते) पगला घोड़ा—घोड़ा पगला गया है—हर समय पगलाया ही रहता है—हर समय···

दरवाजे के बाहर आकर सातू एक ढेला उठाकर खींचकर मारता है।

सातू : ले बेटा।

कुत्ता दो बार भों-भों करता है जैसे उलटकर वार का बदला लेने की कोशिश कर रहा हो। सातू इस बार बड़ा ढेला खींचकर मारता है। एक बार भों-भों-करके कुत्ता एकदम शान्त हो जाता है मानो मर गया हो। सातू हाथ झाड़ते-झाड़ते भीतर आता है।

लड़की : भुलुआ।
सातू : वही कुत्ता है। फिर आकर बैठा है।
लड़की : ना, यह दूसरा कुत्ता है। भुलुआ तो मर गया—कब का।
कार्तिक : जहन्नुम में जाये।
सातू : हाँ, और क्या।
लड़की : मरेगा तो है ही। लछमी के मर जाने पर भुलुआ कैसे जिन्दा रह सकता है!

सातू : जानते हैं, उस कुत्ते को मैं पालने की सोच रहा था।
कार्तिक : किस कुत्ते को ?
लड़की : भुलुआ को।
सातू : उसी नमकहराम कुत्ते को जिसकी बात मैं कर रहा था।
कार्तिक : हाँ—हाँ —आप···
शशि : दो साल पहले जिसके साथ आपका पुनर्मिलन हुआ था ?

इस बार सातू स्वाभाविक अट्टहास नहीं करता।

सातू : हाँ, पुनर्मिलन ही कह लीजिए।···कितना बुलाया पर वह आया ही नहीं।
शशि : कहाँ से नहीं आया ?
सातू : ऐं ?
शशि : पूछ रहा था कि पुनर्मिलन कहाँ हुआ था।
सातू : ऐसे ही—रास्ते में—
लड़की : क्या ?
सातू : नहीं, रास्ते में नहीं—(**जरा सोचकर**) श्मशान में आसनसोल जिले में, एक ऐसे ही गाँव के सूने श्मशान में···

सातू घूमकर खिड़की के पास जाता है। बाहर देखता रहता है। कार्तिक-शशि-हिमाद्रि अन्धकार में धूमिल से हो गये हैं। लड़की झुककर सातू को देखती रहती है।

लड़की : (फुसफुसाकर) लछमी ! लछमी ! लछमी !
सातू : लछमी !

लड़की लछमी बनकर खड़ी होती है। सातू घूमकर उसके पास आता है।

लछमी।

लछमी हँस पड़ती है।

लछमी : बाबूजी, आप हमें लछमी क्यों पुकारते हैं ? हमारा नाम तो लक्ष्मी है···
सातू : तू मुझे बाबूजी क्यों कहती है ? मेरा नाम तो···
लछमी : बा···बा। भला हम आपका नाम कैसे ले सकते हैं ?

सातू : (हँसकर) क्यों लछमी ? मैं तेरा आदमी हूँ क्या कि तू मेरा नाम नहीं ले सकती ?

लछमी दूसरी ओर देखती रहती है। उसके मुख पर आन्तरिक आनन्द की आभा है मानो आदमी शब्द को बार-बार मन-ही-मन दोहरा रही हो।

क्या हुआ ? बोलो।

लछमी धीरे-धीरे घूमकर देखती है।

लछमी : नहीं।
सातू : तब ?
लछमी : उससे बहुत ज्यादा।
सातू : अरे बाप रे ! आदमी से भी ज्यादा ! वह क्या होता है ?
लछमी : पता नहीं।
सातू : तुझे तो कुछ भी पता नहीं होता। हर बात में—पता नहीं।
लछमी : हम पढ़े-लिखे थोड़े ही हैं बाबूजी।
सातू : हँह। पढ़-लिख लेने से ही क्या सब-कुछ जाना जा सकता है ?
लछमी : बाप रे। पढ़-लिख के भी न जाना जायेगा ?

सातू रूमाल निकालकर मुँह पोंछता है।

सातू : घण्टा जाना जायेगा।
लछमी (हाथ बढ़ाकर) दो।
सातू : क्या ?
लछमी : रूमाल। धो दें।
सातू : आज ही तो धुला हुआ दिया है। फिर क्या धोयेगी ?
लछमी : दो न बाबूजी ! हम दूसरा साफ रूमाल देते हैं।
सातू : देख लछमी, मैं दिन-भर धूल-धक्कड़ में काम करता हूँ। इतनी सफाई मुझे नहीं पोसायेगी।
लछमी : (करुण स्वर में) हमें अच्छा जो लगता है।
सातू : तू तो मुझे चौपट करके छोड़ेगी लछमी।
लछमी : (चौंककर) हम ?
सातू : और नहीं तो क्या ? एकदम निकम्मा बना देगी। अपने हाथ से कुछ करने ही नहीं देती।
लछमी : (निश्चिन्त होकर) ओ !

बाहर कुत्ता दो बार आवाज देता है।

सातू : तेरा भक्त आ गया। जा, उसे खाने को दे आ।
लछमी : (हँसकर) बाबूजी, भुलुआ तुम्हें फूटी आँख नहीं सोहाता न !
सातू : (हँसकर) अरे, पर उपाय क्या है ? उसे तो देखना ही पड़ेगा। मैंने उसे देखना छोड़ा तो तू मुझे ही छोड़ देगी।

लछमी जाने के लिए मुड़ी थी, अचानक चौंककर घूमती है।

लछमी : बाबूजी।
सातू : क्या हुआ ?

लछमी जरा देर उसे देखती रहती है।

लछमी : बाबूजी, हम तो तुम्हें मर के ही छोड़ेंगे। हाँ, आपै छोड़ दो तो···
सातू : मुझे तो दोनों में से किसी का चांस नहीं दिखता। तुम अच्छी-खासी तगड़ी हो, जल्दी मरने से रहीं। रहा मैं, सो तुझे छोड़कर मेरा गुजारा कैसे होगा ?

लछमी का चेहरा आनन्द से चमक उठता है। कुत्ता फिर आवाज देता है। लछमी जल्दी से चली जाती है।

लछमी : भुलुआ···भुलुआ···आ···आ।

सातू लौट पड़ता है। भीतर धीरे-धीरे प्रकाश होने लगता है। हिमाद्रि चौकी के कोने पर सिर रखे जैसे सो गया है।

कार्तिक : तारा···तारा माँ।
शशि : कार्तिक बाबू, आपकी मातृ-भक्ति से तो तबियत बोर हो गयी।
कार्तिक : भक्ति ? भक्ति कहाँ दिखी आपको ?
शशि : भक्ति नहीं है तो फिर बार-बार यह हाँक क्यों लगाते हैं ?
कार्तिक : यह हाँक लगाकर मैं दिमाग की गैस बाहर निकाल देता हूँ।
शशि : गैस बाहर निकालने की जरूरत क्यों पड़ती है ?
कार्तिक : सेफ्टी वॉल्व। न निकालने से दिमाग फट गया तो !

सातू खिड़की पर खड़ा है।

शशि : फट जायेगा तो फट जाये। उससे क्या दुनिया इधर की उधर हो जायेगी ?
कार्तिक : अरे, शशि बाबू, सब चारों ओर बिखर जो जायेगा। दिमाग में जो कुछ भरा है न, सब चारों ओर···

शशि : तो कौन बड़ा भारी नुकसान हो जायेगा !

कार्तिक : मेरा क्या नुकसान होगा। आप ही लोग परेशान होंगे, नाम धरेंगे और क्या। कहेंगे कि बुड्ढे की खोपड़ी में न जाने कहाँ का कूड़ा-कचरा भरा था।

शशि : आप फिर फालतू बातें करने लगे ।

कार्तिक : अच्छा बाबा अच्छा, अब और नहीं करूँगा। (**जरा रुककर जोर से**) तारा···तारा···माँ।

शशि चिढ़कर गिलास उठाकर एक घूँट पीता है और जोर से गिलास वापिस रख देता है।

सातू : (धीरे-धीरे) कार्तिक बाबू, आपका मोची ही मजे में रहा।

कार्तिक : अच्छा ! सो कैसे ?

सातू : उसे कुछ मिला नहीं सो आराम से कुछ मिलने की आशा में ही उसने सारा जीवन काट दिया। सबको ऐसा कहाँ नसीब होता है। हमें कोई चीज हाथ लगी नहीं कि गोलमाल शुरू हुआ। हममें से कोई भी चीज को ठीक से रखना तो जानता नहीं। जैसे बच्चे मिट्टी के खिलौने को तुरन्त तोड़-फोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं वैसे ही हम भी पल-भर में हाथ लगी चीज को चूर-चूर कर डालते हैं और फिर मैं-मैं करके रोने बैठ जाते हैं।

इस बीच लड़की पर रोशनी पड़ने लगी है।

कार्तिक : आपने बात कुछ गलत नहीं कही, सातू बाबू।

लड़की : पर टूटे बिना पता कहाँ चलता है कि कुछ मिला था। बोलो पता चलता है।

सातू : अच्छा, हम लोग ऐसा क्यों करते हैं ?

कार्तिक : क्या ?

लड़की : (**खिलखिलाकर हँस पड़ती है**) नहीं जानते ? पगला घोड़ा। पगलाया ही है। सब तहस-नहस कर रहा है। (**अचानक करुण स्वर में**) पगला घोड़ा, तुमने मुझे भी ऐसे ही तहस-नहस क्यों नहीं कर डाला ? ऐसे ही---लछमी की तरह ? मालती की तरह ? मिलि की तरह ? मैं क्या केवल जलूँगी ही ? कभी जुड़ाऊँगी नहीं ?

कार्तिक : तो आपका मतलब है कि मोची ही सबसे मजे में था ? उसने कुछ पाया नहीं, इसीलिए ?

सातू जवाब नहीं देता। लड़की लछमी के रूप में आगे आती है।

लछमी : **(बबे गले से पुकारते हुए)** बाबूजी ! बाबूजी !
सातू : कौन ?
लछमी : दरवाजा खोलो बाबूजी। हम लछमी हैं।
सातू : लछमी तू ? इतनी रात गये ?

लछमी सिर नीचा किये खड़ी रहती है, जवाब नहीं देती।

आ, भीतर आ।

लछमी एक कदम आगे आती है। सातू पास आता है।

क्या हुआ ?

लछमी चुप

कुछ बोलेगी भी या नहीं ?
लछमी : **(टूटे अस्पष्ट स्वर में)** हम वहां और नहीं रह सकते बाबूजी !
सातू : क्यों, क्या हुआ ?

लछमी चुप

मालकिन बुरा बर्ताव करती हैं ?

लछमी गरदन हिलाकर ना करती है।

तब ? मालिक ? वे कुछ कहते हैं ?

लछमी इस बार भी ना करती है।

तब फिर क्या हुआ ? नौकर-चाकर तंग करते हैं ? या बाहर का कोई ?…

लछमी हर बार सिर हिलाकर अस्वीकार करती है।

(अधीर होकर) तब फिर वहाँ क्यों नहीं रह सकती ?
लछमी : हमें अपने पास रख लो बाबूजी।
सातू : अपने पास रख सकता तो क्या वहाँ भेजता ?

लछमी चुप रहती है।

बोल, रख सकता तो क्या यह इन्तजाम करता ?

लछमी चुप रहती है।

सुन, तू थोड़े दिन और देख ले। जान-पहचान के अच्छे परिवार में तेरा इन्तजाम करवा दिया है। अच्छी तरह काम करेगी तो आराम से जिन्दगी कट जायेगी। तू तो काम करने से घबड़ाती नहीं।

लछमी : हमें अपना काम करने दो बाबूजी।

सातू : (**चिढ़कर**) फिर वही बात। कितनी बार कह चुका हूँ कि इस तरह तुझे अपने पास रखने से मेरा काम-काज सब चौपट हो जायेगा। एक भी कन्ट्रैक्ट नहीं मिलेगा। तब खर्चा कैसे चलेगा ? और तुझे ही कहाँ से खिलाऊँगा ?

लछमी खड़ी होकर चुपचाप रोने लगती है।

(**नरम स्वर में**) सुन लछमी—

लछमी के कन्धे पर हाथ रखता है। लछमी उसके पैर के पास बैठ जाती है।

लछमी : हमें अपने पास रख लो बाबूजी। हम एकदम छिपके रहेंगे, कोई न जान पावेगा। हम कभी तुम्हरे बैठका में पैर न रखेंगे। तुम हमें छूना मत, हमसे बात भी मत करना, कुछ न कहेंगे। बस हमें···हमें अपने पास रख लो बाबूजी। अपना काम करने दो···हम कोई से न कहेंगे ···कोई नहीं जानेगा···

सातू : तेरा दिमाग खराब हो गया है ? मेरा लम्बा-चौड़ा मकान है क्या —जो तुझे उसमें छिपाकर रखूँगा ? तम्बू में, झोंपड़ी में, तू कहाँ छिपेगी ? जो देखेगा वही पूछेगा—यह कौन है ? तब मैं क्या जवाब दूँगा ?

लछमी : कह देना—मेरी नौकरानी है।

सातू : देख, ये सब बातें हम लोग बहुत बार कर चुके हैं। मैं अकेला आदमी —तुझ जैसी औरत को नौकरानी रखे हूँ, यह देखकर लोग मेरे बारे में क्या सोचेंगे, बता ? इससे मेरे काम पर असर पड़ेगा।

लछमी : कोई नहीं देख पायेगा बाबूजी, कोई नहीं। हम छिपे-छिपे रहेंगे। हमें भगाओ मत बाबूजी··हमें अपने पास रहने दो बाबूजी···

लछमी सातू के दोनों पैर पकड़कर जोर से झकझोरती है। सातू चिढ़कर हट जाता है। लछमी गिर पड़ती है।

सातू : तू ऐसी पागलों जैसी बातें करती है, जिसका ठिकाना नहीं।

लछमी पड़ी-पड़ी रोने लगती है। सातू उसे उठाता है।

उठ, उठ लछमी, घर जा।

लछमी : घर ?

सातू : हाँ, वही तेरा घर है लछमी। वे लोग बड़े अच्छे आदमी हैं, पैसेवाले भी हैं। माधव बाबू बहुत बड़े ठीकेदार हैं। ऐसे घर में रहकर तेरा भला ही होगा लछमी।

लछमी : भला होगा ?

सातू : कोशिश करके देख न, कोई तकलीफ नहीं होगी। काम में मन लगा। भुलुआ तेरे पास है ही, उससे भी मन लगा रहेगा। धीरे-धीरे तू सब-कुछ भूल जायेगी।

लछमी : भूल जायेंगे ?

सातू : हाँ, लछमी, हाँ। दुनिया में बहुत कुछ भूलना पड़ता है, भूल भी जाता है।

लछमी : तुम हमें एकदम भूल गये हो बाबूजी ?

सातू : फिर वही फालतू बातें। जा, घर जा।

लछमी : तुमने हमें क्यों बचाया था बाबूजी ? जहाँ थे, वहीं मर क्यों नहीं जाने दिया बाबूजी ?

सातू : लछमी !

लछमी : बोलो न बाबूजी, जवाब दो। गुण्डे तो ऐसी न जाने कितनी लड़कियों को चुराकर लाते हैं। लड़कियों को खरीदते-बेचते हैं, इसी का रोजगार करते हैं। तुम हमें क्यों ले आये ? तुम क्यों···

सातू : लछमी !

लछमी : तुमने काहे उन लोगों के साथ मार-पीट की ? तुम काहे छुरा देखकर डरे नहीं ? जान का डर तुम्हें काहे नहीं लगा ?

सातू : लछमी, अब इन सब बातों को···

लछमी : बोलो न ? बोलो न ? हमारे लिए, सब हमारे लिए किया था न ?

सातू : मान लो किया ही हो तो ?

लछमी : तो फिर आज हमें अपने पास से दूर काहे भगा दे रहे हो बाबूजी ?

सातू : इसे भगाना कहते हैं ?

लछमी चुप रहती है।

जा, अब घर लौट जा। जा।

लछमी घूमकर अन्धों की तरह पैर घसीटते-घसीटते चली जाती है। उसके चले जाने तक सातू उसे देखता रहता है।

कार्तिक : (खाली गिलास को घुमा-फिराकर देखता है) बोतल क्या खाली हो गयी भैया ?

(कोई जवाब नहीं देता) ओ सातू बाबू !

सातू : (चौंककर) ऐं !

कार्तिक : आप कहाँ थे ?

सातू : (आगे आकर) यहीं तो।

कार्तिक : बोतल खाली हो गयी ?

सातू : नहीं, अभी तो है। (ढालता है। खुद भी लेता है।) शशि बाबू, आपने उस समय एक प्रश्न पूछा था। अब मैं एक प्रश्न पूछूं ?

शशि : हाँ-हाँ, बड़ी खुशी से। पर उत्तर नहीं पाइएगा।

सातू : क्यों ?

शशि : इसलिए कि किसी भी प्रश्न का उत्तर होता ही नहीं।

कार्तिक : आप पूछिए न सातू बाबू।

सातू : मान लीजिए···मान लीजिए आपको कोई कीमती हीरा रास्ते में नाली में पड़ा मिल जाता है। आप उसे उठा लाते हैं पर घर लाने पर लगता है कि इतना कीमती हीरा घर में रखने लायक आपकी सामर्थ्य नहीं है। इसलिए आप उसे···

कार्तिक : हीरा कीमती था इसलिए ? या उसे रखने की सामर्थ्य नहीं थी, इसलिए ?

सातू : (जरा रुककर) अच्छा ऐसे ही सही। आप उसे बड़े जतन से कुछ दिनों के लिए अपने किसी अच्छे दोस्त के पास रख देते हैं···ऐसे दोस्त के पास जो उसे रख सकता है···जिसके पास उसे रखने की जगह है···

कार्तिक : कुछ दिनों के लिए जतन से रख देते हैं या दे देते हैं ?

सातू : (रुककर) अच्छा, मान लीजिए दे ही दिया। वहाँ अच्छी तरह रह सकेगा यह सोचकर दे ही दिया।

कार्तिक : अर्थात् उससे छुट्टी पायी।

सातू : नहीं।

कार्तिक : अच्छा बाबा, अच्छा, दे ही दिया। आगे बोलिए।

सातू : पर वह उस हीरे का दुरुपयोग करता है। अपने स्वार्थ के लिए वह उसे किसी बड़े आदमी को भेंट दे देता है। वह बड़ा आदमी उस हीरे से खिलवाड़ करता है और हीरा घूम-फिरकर फिर उसी गन्दी नाली में पहुँच जाता है।

कार्तिक : आदमी को आदमी ही रहने दीजिए न, उसे फालतू हीरा-फीरा क्यों बनाते हैं।

सातू चुप रहता है।

आपका सवाल क्या है ?

सातू : क्या उसे उठाकर लाना गलत था ? या उसे किसी और को देना गलत था ?

कार्तिक : गलत ? अरे सातू बाबू, आदमी जो कुछ भी करे वह गलत ही होता है। इसलिए यह गलत शब्द कोई अर्थ नहीं रखता।

सातू : तब उसे क्या कहूँ ? दोष ? अपराध ?

कार्तिक : यह सब एक ही बात है। असल में आदमी का आदमी होना ही सबसे बड़ा अपराध है।

लड़की पर पुनः प्रकाश पड़ता है।

शशि : कार्तिक बाबू, आप फिर फालतू बातें करने लगे।

कार्तिक : फालतू बातें ? तो जाने दीजिए तब फिर—तारा···तारा माँ।

सातू कुछ सोचते-सोचते दरवाजे के पास जाता है। अचानक झुककर खड़ा हो जाता है।

सातू : आः-आः—चू-चू-चू-चू—भुलुआ। मुझे पहचान नहीं पा रहा है ? आः आः, चू-चू···

लड़की : वह तो नहीं आयेगा। कैसे आयेगा ? लछमी जल जो रही है। उधर···जल रही है। वह क्यों आयेगा ?

सातू : भुलू ! भुलुआ !

कार्तिक : अभी तो लकड़ी से मारा, अब फिर पुचकार रहे हैं। बात क्या है सातू बाबू ?

लड़की अन्धकार में खो जाती है। सातू सीधे खड़ा होकर घूमकर देखता है। उसकी दोनों आँखें विचित्र ढंग से जल-सी रही हैं। मुँह पर बेचैनी की हँसी है। हँसी ऐसी, मानो हँसी का मुखौटा लगा रखा हो। सातू अचानक कार्तिक के पास आता है। झुककर कार्तिक के चेहरे के पास चेहरा ले आकर फुसफुसाकर बातें करने लगता है।

सातू : बात ! सुनिएगा ? बात यह थी कि एक बार आसनसोल जिले के एक शहर के एक खास मुहल्ले के एक खास मकान के एक खास कमरे में मैं एक खास काम में लगा था। बगल के एक कमरे में एक लड़की मौत से लड़ रही थी। उसे टी. बी. हो गयी थी और कोई एक खास बीमारी भी थी। मैं जब देखने गया, तब वह मर चुकी थी। मर न

गयी होती तो देखने क्यों जाता, आप ही बतलाइए ? न जाने कितने ही लोग मरते हैं, कहाँ तक देखा जाये ? एकदम मर गयी थी इसीलिए गया···

गिलास उठाकर एक साथ ढेर-सी पी जाता है । उसके बाद फिर पहले की ही तरह झुककर अपनी बात चालू रखता है ।

जाकर क्या देखता हूँ कि एक आवारा कुत्ता उसके बगल में बैठा है, किसी को पास जाने ही नहीं देता । भला यह भी कोई बात थी । हम कई लोगों ने मिलकर कुत्ते को खदेड़कर बाहर किया । फिर कफन-काठी लाकर 'राम-नाम सत्य है' करते-करते इसी तरह के एक सूने श्मशान में ले जाकर··· (**एक घूँट और पीकर गिलास नीचे रख देता है**) न जाने क्यों, लोगों ने मुझे ही आग देने को कहा । न जाने क्यों मेरे मन ने भी कहा कि मुझे ही आग देनी चाहिए । पर जैसे ही मैं आग देकर घूमा, वह कुत्ता···

बाहर कुत्ता जोरों से रो उठता है । सातू पागलों की तरह चिल्लाता हुआ एक ही छलाँग में बाहर आ जाता है और पत्थर खींच-खींचकर कुत्ते को मारने लगता है । साथ ही बोलता जाता है—

गेट आउट ! गेट आउट ! गेट आउट, यू ब्लडी सूअर का बच्चा ।

हिमाद्रि हड़बड़ाकर उठ बैठता है । शशि चौंककर खड़ा हो जाता है । कार्तिक अपनी जगह पर वैसे ही बैठा रहता है ।

हिमाद्रि : क्या हुआ ? सातू बाबू···अरे ओ सातू बाबू···

उठकर खड़ा हो जाता है ।

कार्तिक : (**हाथ से इशारा करते हुए**) बैठो, बैठो । कुछ नहीं हुआ ।

सातू थोड़ी देर तक बाहर की ओर देखते हुए दरवाजे पर खड़ा रहता है । फिर जल्दी से भीतर की ओर जाता है ।

हिमाद्रि !

हिमाद्रि : ऐं ?

कार्तिक : एक बार और उलट-पुलट आओगे ?

हिमाद्रि : हाँ, जाता हूँ ।

कार्तिक : जरा सातू बाबू को भी देख लेना ।

हिमाद्रि : अच्छा।

दरवाजे तक जाता है।

कार्तिक : उन्हें छेड़ना मत। बस देख लेना।

हिमाद्रि घूमकर देखता है। फिर बिना कुछ बोले चला जाता है।

शशि : क्या बात है कार्तिक बाबू ? हुआ क्या ?

अँधेरे में ही लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ती है। उस पर रोशनी पड़ती है।

लड़की : तुम नहीं जानते कि क्या हुआ ? नहीं जानते ? पगला घोड़ा। घोड़ा पगला गया है।

हँसते-हँसते लोटपोट हो जाती है।

कार्तिक : हुआ वही जो हर आदमी को होता है।

शशि : हर आदमी को क्या होता है ?

कार्तिक : पागलपन सवार हो जाता है, हम आदमी रह-रहकर पगला जाता है।

शशि : (जरा रुककर) आपको तो पगलाते नहीं देखा !

कार्तिक : मेरे जीवन में शायद कुछ ऐसा घटा ही नहीं कि पगलाता।

लड़की : सच ? सच कह रहे हो ? पगला घोड़ा ने तुम्हारी ओर भी नजर नहीं डाली ? तुम्हारी ओर कभी नहीं गया ? मेरी ही तरह तुम भी हो ? सच ?

शशि : क्यों ?

कार्तिक : ऐं ?

शशि : आपके जीवन में कुछ घटा क्यों नहीं ?

कार्तिक : क्या पता।

लड़की : ऐसा क्यों होता है ? इतनी ज्यादती क्यों ? पगला घोड़ा सबको क्यों नहीं देख पाता। काना है क्या ? ओं, समझ गयी। उसकी आँखों पर पर्दा पड़ा रहता है। न, इसीलिए।

शशि : अच्छा कार्तिक दा···

कार्तिक : बोलो।

शशि : यह लड़की मरी कैसे ?

लड़की : यह जानकर क्या होगा ? क्या होगा ?

कार्तिक : हार्ट फेल। हाट की ही कोई बीमारी थी।

शशि : हार्ट की बीमारी ?
कार्तिक : ऐनजाइना पेक्टोरिस।
शशि : ओ (जरा रुककर) सर्टिफिकेट में डाक्टर ने यही लिखा होगा।
कार्तिक : हाँ।
शशि : ओ ! (जरा रुककर) यही सोच रहा था।
कार्तिक : ऐं ?
शशि : मैंने कहा कि मैं यही सोच रहा था।
कार्तिक : ओ ! (जरा रुककर) तारा···तारा माँ (एक घूँट पीकर) क्या सोच रहे थे ?
शशि : यही कि लड़की मरी कैसे ?
कार्तिक : ओ !
लड़की : क्या करोगे जानकर ? उससे क्या बनता-बिगड़ता है ? मैं जिन्दा ही क्यों रही ? मैंने जिन्दगी में क्या पाया ? किसी को क्या दिया, कोई बता सकता है ?
शशि : आप जानते हैं ?
कार्तिक : क्या ?
शशि : फिर यह मरी कैसे ?
कार्तिक : हाँ।
शशि : (जरा रुककर) कैसे ?
कार्तिक : दम बन्द होने से।

लड़की दोनों हाथों से गला पकड़ लेती है।

शशि : (जरा रुककर) फाँसी लगाकर ?
कार्तिक : हाँ।
शशि : आपको कैसे पता ?
कार्तिक : डाक्टर ने बतलाया।
शशि : डाक्टर ने आपको हिस्सा नहीं दिया ?
कार्तिक : दिया था।
शशि : (जरा रुककर) आपने लिया नहीं ?
कार्तिक : (जरा रुककर) ना।
शशि : (जरा रुककर) क्यों ?

कार्तिक जरा-सा हँसता है। फिर गिलास उठा लेता है।

कार्तिक : तारा···तारा···तारा ब्रह्ममयी-माँ।

लड़की अचानक जलती हुई आँखों से कार्तिक की ओर देखती है।

लड़की : तुम्हारे भीतर क्या भरा है ? तुम ऐसे ठण्डे, निर्विकार कैसे रह सकते हो ? तुम्हारे भीतर जलन नहीं होती ? पगला घोड़ा के अन्याय-अविचार से तुम्हारे अन्दर धू-धू करके ज्वाला नहीं उठती ?

शशि : कार्तिक दा।

कार्तिक : ऊँ ?

शशि : मेरा नशा अब जोर कर रहा है।

कार्तिक : अच्छा (रुककर) पर इस सत्य का पता कैसे चला ?

शशि : लड़की के लिए मन में दुःख हो रहा है।

लड़की : दुःख ? मैं मर गयी हूँ, इसीलिए ?

खिलखिलाकर हँस पड़ती है।

कार्तिक : लड़की के लिए मरना-जीना सब एक-सा हो गया है। क्या फर्क पड़ता है ?

खड़ा होकर अँगड़ाई लेता है।

तारा···तारा।

शशि : लड़की जिन्दा नहीं रहना चाहती थी ?

कार्तिक : क्यों चाहती ? वह तो जानती ही न थी।

शशि : क्या ?

कार्तिक : कि जिन्दा रहने में क्या लाभ है।

लड़की : तुम्हीं बोलो क्या लाभ था ? क्या लाभ था ?

कार्तिक खिड़की के पास जाकर खड़ा होता है।

शशि : वह मरना चाहती थी ?

कार्तिक : हाँ, बीच-बीच में ऐसा भी सोचती थी।

शशि : किसी तकलीफ के कारण ?

कार्तिक : ना (जरा रुककर दृढ़ स्वर में) ना।

लड़की दो कदम आगे आती है—जैसे करुण दृष्टि से वह कार्तिक से कुछ माँग रही हो।

लड़की : नहीं दीजिएगा ?

कार्तिक : ना।

लड़की : क्यों नहीं दीजिएगा ?
कार्तिक : क्यों दूँ ?
लड़की : मेरे जिन्दा रहने का क्या माने है ?
कार्तिक : (जरा रुककर) तकलीफ और नहीं सही जा रही है ?
लड़की : तकलीफ ? (जरा रुककर) नहीं, तकलीफ नहीं है। मैं किसी तकलीफ के कारण नहीं आयी हूँ।
कार्तिक : तब फिर ?

लड़की चुप रहती है, कार्तिक की नजर तेज हो जाती है—जैसे कुछ खोज रहा हो।

तब फिर मरना क्यों चाहती हो।
लड़की : (धीरे-धीरे) पता नहीं। मैं आपको समझा नहीं पाऊँगी। जिन्दा रहकर क्या होता है ? आदमी क्यों जिन्दा रहना चाहता है ? उसे क्या मिलता है ?
कार्तिक : तुम्हें कुछ मिला नहीं, इसीलिए तुम मरना चाहती हो ?
लड़की : शायद।
कार्तिक : तुम क्या पाना चाहती हो ?
लड़की : वह भी पता नहीं। कुछ चाहती जरूर हूँ, बस, इतना-भर जानती हूँ। कुछ मिलता नहीं है, यह भी जानती हूँ। क्या चाहना चाहिए, क्या पाया जा सकता है, यह सब तो कभी जाना नहीं।

कार्तिक की दोनों मुट्ठियाँ बँध गयी हैं।

आप बतला सकते हैं ? पाने को क्या है ? क्या पा लेने से जिन्दा रहा जा सकता है ?
कार्तिक : तुम्हारी बात मैं नहीं जानता। पर हाँ, दूसरी बहुत-सी लड़कियों को यदि···

रुक जाता है।

लड़की : (उत्सुकता से) बोलिए न ? रुक क्यों गये ? दूसरी लड़कियों को क्या···
कार्तिक : (दूसरी ओर देखते हुए) ठीक से नहीं जानता। शायद प्रेम मिल जाये तो वे जिन्दा रह सकती हैं।
लड़की : प्रेम ! (सोचकर) पर वह क्या है, कैसे मिलता है, मैं तो कुछ भी नहीं जानती। (जरा रुककर) इतने दिनों तक तो···इतने दिनों तक

तो··· (अचानक) अच्छा, आपकी तो काफी उम्र हुई···
कार्तिक : हाँ, इसमें भी कोई शक है !
लड़की : आपने तो बहुत कुछ देखा-जाना है। आप बता सकते हैं ?
कार्तिक : क्या ?
लड़की : कि मेरे जैसी लड़की क्या कभी पा सकती है ?
कार्तिक : क्या ?
लड़की : प्रेम। किसी का प्रेम पा सकती है ? किसी को प्रेम कर सकती है ?
कार्तिक : (जरा रुककर) जिन्दा रहने से सब सम्भव है।
लड़की : सच ? आप सच कह रहे हैं ?
कार्तिक : पर उसमें भी कम तकलीफ थोड़े ही होती है।
लड़की : तकलीफ ही तो मैं चाहती हूँ···वही तो मुझे चाहिए। मुझे कोई तकलीफ, कोई दर्द नहीं होता इसीलिए तो आपके पास जहर माँगने आयी हूँ। मैं मरना नहीं चाहती। मैं जिन्दा रहना चाहती हूँ—मैं दर्द चाहती हूँ, तकलीफ चाहती हूँ, पर··· (फिर हताश होकर) पर वह क्या किसी दिन होगा ? नहीं होगा। कभी नहीं होगा, मैं जानती हूँ।··· आप मुझे जहर दे दीजिए।
कार्तिक : नहीं।
लड़की : ठीक है, मत दीजिए। दूसरे और उपाय भी हैं।

घूम जाती है।

कार्तिक : सुनो।

लड़की फिर घूमती है।

लड़की : क्या ?
कार्तिक : तुम मेरी बात पर विश्वास क्यों नहीं करतीं ?
लड़की : आप कैसे जानेंगे कि मुझे कितनी तकलीफ है और इन बातों पर विश्वास करना मेरे लिए कितना कठिन है।
कार्तिक : तुम मुझे थोड़ा और समय दोगी ?
लड़की : समय ? क्यों ?
कार्तिक : ताकि मैं तुम्हें समझा सकूँ। तुम्हें विश्वास दिला सकूँ।
लड़की : (धीरे-धीरे सिर हिलाकर) सो नहीं हो सकेगा।
कार्तिक : उसके बाद तुम्हारी जो मर्जी आये, करना। यदि चाहोगी तो मैं जहर भी दे दूंगा।

लड़की : दीजिएगा ?

कार्तिक : हाँ, दूँगा। तुम मुझे सात दिन का समय दो। सात दिन के बाद, इसी समय तुम आना। उस दिन यदि तुम्हें विश्वास न दिला सका तो जो चाहोगी, दूँगा।

लड़की : ठीक ?

कार्तिक : ठीक।

लड़की : अच्छा··· (जरा रुककर) देखूँ।

लड़की चली जाती है। कार्तिक देखता रहता है।

शशि : तब ? क्यों !

कार्तिक : ऐं ?

शशि : कोई तकलीफ नहीं थी तब फिर क्यों मरी ?

कार्तिक : लगता है, शायद वह जिन्दा रहने का कोई कारण नहीं ढूँढ़ पायी— (जरा रुककर) बुद्धू···उसे मालूम नहीं था न !

शशि : क्या ?

कार्तिक : कि जिन्दा रहने पर सब सम्भव होता है।

लड़की पर रोशनी पड़ती है।

लड़की : क्या ? क्या सम्भव होता है ?

कार्तिक : और कुछ दिन यदि वह जिन्दा रहती···

लड़की : तो क्या होता ? मैं और कुछ दिन जिन्दा रहती तो तुम मुझसे क्या कहते ? बकवास···एकदम बकवास···

कार्तिक : और कुछ दिन···

लड़की : क्या होता ? तुम क्या मुझे मालती बना सकते ? या मिलि ? या लक्ष्मी ? एकदम फालतू बात।···उससे तो जो हुआ, वही अच्छा हुआ वहाँ जल रही है न, जले। जितनी मर्जी आये, जले।

शशि : उसके कुछ दिन और जिन्दा रहने से क्या होता ?

कार्तिक : हो सकता है कुछ भी न होता। और कौन जाने, कुछ हो ही जाता। कौन कह सकता है।

लड़की : मैं कह सकती हूँ। कुछ नहीं होता। बहुत देख लिया है। बहुत। कुछ नहीं होता।

कार्तिक : खाली एक बात मन में आती है।

शशि : क्या ?

कार्तिक : मान लो मेरी उस कहानी के मोची की तरह कोई उसके खाली मन को भी भर देता—कोई भी—बूढ़ा, काना, लंगड़ा, लूला कोई भी।

यदि उसके मन को भर देता—बहुत दिनों तक—सालों तक—

लड़की : वैसा कुछ नहीं हुआ···कुछ···नहीं···कुछ भी नहीं। काश···वैसा होता···

कार्तिक : और वह लड़की किसी दिन यदि यह जान पाती···तो भी क्या वह इस तरह जान देती?

लड़की : जान देती? **(हँस पड़ती है)** तुम नहीं जानते? क्यों?

शशि : कौन जाने। हो सकता है और तकलीफ पाती, फिर मरती।

लड़की : हाँ, मरती। मालती की तरह—मिलि और लक्ष्मी की तरह। पर तब मरने की कोई सार्थकता होती। जिन्दगी में कुछ पाकर मरती।

कार्तिक : क्या पता। शायद वही होता। सब प्रश्नों का उत्तर यदि आदमी के पास होता तो···

शशि : **(हँसकर)** आदमी आदमी न होता।

लड़की : पगला घोड़ा—तुमने वैसा क्यों नहीं किया? क्यों मैं किसी का मन न भर सकी? क्यों कोई और मेरा मन न भर सका? तुमने ऐसा क्यों नहीं होने दिया? तुम्हारी आँखों पर पर्दा क्यों पड़ा रहता है? क्यों? बोलो···

हिमाद्रि लौटता है, उसके पीछे सातू है। सातू आते ही अपना गिलास खाली करता है।

हिमाद्रि : शशि दा, अब करीब-करीब जल चुकी है।

लड़की : **(मरे-से स्वर में)** जल चुकी है? एकदम शेष हो गयी? एकदम शेष हो···

लड़की अन्धकार में खो जाती है।

कार्तिक : **(बोतल उठाकर)** हाँ, बोतल भी शेष हो चली।

शशि : **(उठकर)** चलिए, चला जाये।

कार्तिक : **(बोतल दिखलाते हुए)** सातू बाबू?

सातू : नहीं, अब और नहीं।

कार्तिक : शशि बाबू?

शशि : ना।

कार्तिक : हिमाद्रि?

हिमाद्रि : नहीं। चलिए, चलें।

ये तीनों कोने से गमछा उठाकर कमर में बाँधते हैं।

कार्तिक : तुम लोग आगे बढ़ो, मैं इसे शेष करके आता हूँ। देर नहीं लगेगी।

शशि : (हँसकर) कार्तिक बाबू शेष किये बिना और शेष देखे बिना हिलते नहीं। चलिए सातू बाबू।

तीनों का प्रस्थान। कार्तिक हाथ का गिलास एक घूँट में खत्म करता है। बोतल में कितनी बची है, इसे अच्छी तरह देखता है। उठकर सुराही से थोड़ा पानी गिलास में ढालता है। गिलास उठाकर देखता है —मानो नापकर भर रहा हो। थोड़ा-सा और पानी ढालता है। खड़े होकर बड़ी सावधानी से थोड़ा-सा फेंकता है। फिर बोतल की सब ह्विस्की गिलास में ढालता है। लड़की पर रोशनी पड़ती है। वह बैठी कार्तिक को देख रही है।

लड़की : यह क्या कर रहे हो ?

कार्तिक बड़ी सावधानी से टेंट से एक पुड़िया निकालकर उसमें का सफेद पाउडर गिलास में डालता है। उसका हर काम जैसे पहले से निश्चित किया हुआ हो।

यह क्या ? तुम क्या कर रहे हो ?···क्या कर रहे हो ?

कार्तिक सामने की ओर मंच के बीच आ जाता है। आँख के सामने करके गिलास को धीरे-धीरे हिलाता है जिससे पाउडर मिल जाये पर पानी न छलके। उसके चेहरे पर एक शान्त हँसी है, जैसे अभी कोई बड़ी मजेदार बात सुनी हो।

कार्तिक : कार्तिक कम्पाउण्डर शेष किये बिना और शेष देखे बिना नहीं हिलता न ? क्यों ? सब शेष हो चुका है शशि बाबू ! लीजिए, इस बार सब शेष !

लड़की : क्या कह रहे हो तुम ?

कार्तिक : सात साल। सात साल तक मोची अपने अन्तर को भरे रहा— सात साल तक। कार्तिक कम्पाउण्डर ! सात साल प्रतीक्षा करने के बाद तुमने सात दिन समय माँगा था—वह भी नही मिला।

लड़की चौंककर खड़ी हो जाती है।

लड़की : क्या ? क्या कहा ?

कार्तिक : जाने दो। अन्त देख लिया, अब और कुछ देखने को नहीं रहा। खेल खत्म !

लड़की : तुम''तुम सात साल तक'''मुझे'''मेरे लिए''?

कार्तिक : (अत्यन्त शान्त भाव से गिलास उठाते हुए) तारा'''तारा माँ। चीयर्स !

लड़की : (चीत्कार करके) ना ना ना ना ना।

कार्तिक गिलास को मुँह तक लाकर अचानक रुक जाता है। गरदन टेढ़ी करके जैसे कुछ सुनने की कोशिश करता है। न जाने क्या सोचता है।

(चीत्कार करके) मुझे चिता पर से उतार लाओ। अभी भी जलकर राख नहीं हुई हूँ—अभी भी जल रही हूँ—उतार लाओ—पगला घोड़ा ! मुझे लौटा लाओ, मुझे उतार लाओ, पगला घोड़ा !

लड़की अन्धकार में डूबी जा रही है।

पगला घोड़ा ! पगला घोड़ा !

लड़की अन्धकार में खो जाती है। केवल उसके चीत्कार की हल्की-सी ध्वनि 'पगला घोड़ा' गूँजती रहती है। मुँह के पास गिलास रखे कार्तिक जैसे कुछ सुनता रहता है।

कार्तिक : (धीरे-धीरे) जिन्दा रहने पर सब सम्भव हो सकता है ?—सात दिन समय नहीं दिया—केवल सात दिन चाहा था। मैं''मैं भी क्या''? तब क्या अभी शेष नहीं हुआ है ? जिन्दा रहने पर सबकुछ सम्भव हो सकता है ?

कोई उत्तर नहीं देता। कार्तिक धीरे-धीरे गरदन घुमाकर इधर-उधर देखता है, मानो कुछ खोज रहा हो। बाकी शरीर अभी भी स्थिर है। उसके बाद गिलास को देखता है—एक लम्बी साँस खींचता है।

तारा'''तारा माँ !

धीरे-धीरे गिलास का पानी जमीन पर गिरने लगता है। धीरे-धीरे पर्दा बन्द होता है—कार्तिक तब भी पानी ढालता ही रहता है।

०००

एवम् इन्द्रजित्

बादल सरकार के मूल बांग्ला नाटक का
प्रतिभा अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत अनुवाद

अनामिका मंचमाला-2

प्रस्तुत पुस्तक के किसी भी अंश के रेडियो, टेलीविजन या मंच पर प्रदर्शन या किसी भी भाषा में अनुवाद अथवा प्रस्तुतीकरण के लिए रूपान्तरकार की अनुमति लेना अनिवार्य है।

'एवम् इन्द्रजित्' और अनुवादक का वक्तव्य

वर्तमान दशक में भारतवर्ष में लिखे गये नाटकों में 'एवम् इन्द्रजित्' (बांग्ला) का विशिष्ट स्थान है। पिछले दिनों मराठी, गुजराती, कन्नड़, हिन्दी, बांग्ला, पंजाबी आदि भाषाओं के नाटकों में परस्पर आदान-प्रदान होता रहा है और इसके परिणामस्वरूप 'तुग़लक', 'सुनो जनमेजय', 'कस्तूरी मृग', 'शान्तता ! कोर्ट चालू आहे', 'साप उतारा', 'कांचनरंग', 'रजनीगन्धा', 'एवम् इन्द्रजित्', 'छलावा' आदि जैसे अनेक नाटक अपनी भाषा के सीमित क्षेत्र की सीमा का अतिक्रमण करके अखिल भारतीय स्तर पर पहुँच गये हैं। 'एवम् इन्द्रजित्' का अनुवाद हिन्दी, गुजराती और कन्नड़ में हो चुका है और अंग्रेज़ी में होने की बात है। 'एवम् इन्द्रजित्' की इस लोकप्रियता का कारण उसके कथ्य एवं शैली दोनों का वैशिष्ट्य है। आज के युवक—और सम्भवतः हर युग के युवक—की महत्त्वाकांक्षा और परवर्ती कुण्ठा एवं निराशा का बड़ा ही यथार्थ चित्रण इस नाटक में किया गया है, किन्तु उससे भी बड़ी बात इस सत्य को स्वीकार करने की है कि मृत्यु का वरण समस्या का समाधान नहीं है। यह जानते हुए भी कि हमारे पास आस्था, विश्वास, प्रेम जैसा कोई भी जीने का सम्बल नहीं है, हमें जीना है; यह ज्ञान होते हुए भी कि यात्रा के पूरी होने पर कोई देवलोक सम्मुख नहीं होगा, हमें चलते चलना है क्योंकि हमारे सामने पथ है। तीर्थ नहीं, तीर्थयात्रा ही हमारा इष्ट हो तो भी क्या आपत्ति है ? जीवन को हम चाहे रीझकर स्वीकार करें चाहे खीझकर, उसे स्वीकार करना ही होगा। वैसे नाट्यकार बादल सरकार स्वयं इस नाटक को आशावादी या निराशावादी किसी भी स्वर के साथ समाप्त करने के पक्ष में नहीं हैं। उनका कहना है कि जीवन में न आशा का प्रश्न है और न निराशा का, हमारे सामने जीवन है, हमें जीना है, मानसी

की प्रेरणा और इन्द्र का जीवित रहने का स्वीकार ऐसा ही आवेगरहित स्वीकार है, सारी आशाओं-आकांक्षाओं, विषमताओं-विवशताओं से लड़-जूझकर थके हुए उस व्यक्ति का स्वीकार है जो जीवन का कोई अर्थ नहीं ढूँढ पाता है, फिर भी सहज ही मरने का निर्णय नहीं कर पाता क्योंकि वह भी उतना ही तथ्यहीन लगता है। लेखक की इस व्याख्या और स्पष्टीकरण से सहमत हुआ जा सकता है, बहुत दूर तक मैं हूँ भी। किन्तु ऐसा लगता है कि नाटक के अन्त को सर्वथा आवेगरहित बनाने की चेष्टा करने के बावजूद, उसमें कहीं हल्का-सा संकेत आशा का आ ही गया है। तीर्थ-पथ पर यात्रा करने की आकांक्षा रखनेवाला नाटक का कवि, अवश्य ही अपने तीर्थ-पथ को मंगलमय मानता होगा, तीर्थ तक पहुँच पाने की सम्भावना के प्रति अत्यन्त शंकालु होते हुए भी वह 'मुक्त-हृदय निर्द्वन्द्व भाव से' उसी पथ पर चलने के अपने प्रारम्भिक निर्णय पर अटल रहना चाहता है।

तीर्थ नहीं, है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं है, केवल पथ ही
इसी तीर्थ-पथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

—ये पंक्तियाँ कहीं बहुत दूर ही सही, इतनी दूर जहाँ हम शायद पहुँच ही न सकेंगे, प्रकाश की एक क्षीण रेखा का आभास देती हैं। अवश्य ही यह बहुत उल्लसित होने की स्थिति नहीं भी हो सकती है किन्तु सर्वथा निराश होकर टूट जाने की भी नहीं। पथ है इसलिए चलना है, मृत्यु का वरण करने की बात भूलकर जीवन को स्वीकार करना है, इसे बादल सरकार ने बड़े बल-पूर्वक इस नाटक में कहा है।

नाटक का कथ्य अत्यन्त यथार्थवादी और सामयिक होते हुए भी उसका शिल्प अत्यन्त प्रतीकात्मक है। लेखक ने बड़ी कुशलतापूर्वक यथार्थ और कल्पना का सयोजन किया है। एक ही पात्र द्वारा कई भूमिकाओं का निर्वाह, एक ही अंक में कई दृश्यों की योजना जो बिना किसी मंच-सज्जा या उपकरण के ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं, अलक्ष्य पात्रों की उपस्थिति (साक्षात्कार करनेवाले पात्र) आदि नाटक में अन्तर्निहित ऐसी स्थितियाँ है जिन्हें यथार्थवादी शैली में कभी प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। जीवन के दस-पन्द्रह वर्षों के क्रिया-कलाप को इस नाटक में समेटा गया है, एक ही दृश्य में विभिन्न पात्रों को विभिन्न रूपों में भी प्रस्तुत किया गया है। नाटक के ये तथ्य जहाँ निर्देशक, अभिनेता एवं दर्शक की कल्पना को मुक्त विचरण के लिए पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करते हैं वहीं ये निर्देशक के लिए सीमा भी बन जाते हैं। इन स्थलों को एक विशेष भाव-भंगी से प्रस्तुत करने के अतिरिक्त

और कोई चारा नहीं रह जाता। यही उसकी शक्ति और यही उसकी सीमा भी है। इसी कारण इस एक दृष्टि से विभिन्न प्रस्तुतियों में बहुत दूर तक एकरूपता आये बिना नहीं रहती।

'एवम् इन्द्रजित्' का अनुवाद एक बड़ा सुखद और साथ ही तृप्तिकारी अनुभव रहा है। आज से प्राय: तीन साल पहले जब इस नाटक को देखा तो बहुत ही अच्छा लगा था और यह इच्छा हुई थी कि इसे हिन्दी में किया जाये, किन्तु बांग्ला रंगमंच पर इसकी सफलता हम लोगों पर भी कुछ ऐसी हावी थी कि साहस नहीं हो पाता था। अत: अनुवाद करने का प्रश्न भी नहीं उठता था। उसके बाद इस नाटक को दो बार और देखा और यह धारणा दृढ़ होती गयी कि इसे अवश्य ही प्रस्तुत करना चाहिए। शीघ्र ही न भी प्रस्तुत किया जाये तो कम-से-कम अनुवाद तो कर ही डाला जाये। इस निर्णय ने अनुवाद करने को प्रेरित किया और उसमें हाथ लगाया। काम सुचारु रूप से आगे बढ़ा और पूरे गद्यांश का अनुवाद सहज ही हो गया। इसके बाद समस्या आयी कविताओं के अनुवाद की। कविताएँ—'एवम् इन्द्रजित्' का अनिवार्य अंग हैं, उन्हें बाद देकर नाटक का अनुवाद करना नाटक के साथ अन्याय करना था और उन कविताओं को हृदयंगम करके उनका ऐसा सरस और प्रवाहमय अनुवाद करना ताकि कथ्य भी स्पष्ट हो और आवृत्ति करने में अभिनेता एवं दर्शक दोनों को आनन्द मिले, कठिन कार्य था। अपनी प्राध्यापिका मित्र श्रीमती अमिता चक्रवर्ती से कविता के मूल भाव पर अच्छी तरह चर्चा करने के बाद अनुवाद किया। संशोधन और पुन:संशोधन के बाद ही कविता को अन्तिम रूप दिया जा सका। वैसे तो अपना कृतित्व अच्छा लगता ही है, यह हम सबकी सहज स्वाभाविक दुर्बलता है, किन्तु यह कृतित्व मुझे विशेष रूप से अच्छा लगा, इस अतिरिक्त दुर्बलता को स्वीकार करती हूँ। स्वयं बार-बार पढ़ने पर कविताएँ मन को और रमाती हैं, अपने प्रवाह में बहा ले जाती हैं। अवश्य ही इसमें बादल सरकार के कृतित्व का मेरे कृतित्व से अधिक योगदान है, फिर भी थोड़ा अंश तो मेरा है ही। अब तक मेरे द्वारा किये गये अनुवादों में यह सर्वश्रेष्ठ है, यह मेरी और मेरे मित्रों की सभी कि राय है।

'एवम् इन्द्रजित्' की तीन प्रस्तुतियाँ

ऊपर से पर्याप्त स्पष्ट दीखते हुए भी कोई कृति कितनी जटिल हो सकती है और उसके मूल कथ्य की व्याख्या करते हुए हम किस तरह एक-दूसरे से भिन्न दृष्टिकोण अपना सकते हैं, यह तथ्य बादल सरकार के 'एवम् इन्द्रजित' की तीन प्रस्तुतियों को देखकर हस्तामलकवत् स्पष्ट हो गया।

कथ्य और शिल्प, ये ही दो बिन्दु हैं जिन पर सारे नाटक का रूपायन निर्भर करता है। कथ्य सर्वथा लेखक का होता है, निर्देशक उसे यथासम्भव आत्मसात् करता है, गहरे उतरकर उसका साक्षात्कार करता है, और तब अपनी कल्पना के द्वारा उसे रंग-रंजित करके मंच पर खड़ा करता है। जहाँ कथ्य का अधिकांश लेखक का होता है, वहीं शिल्प का अधिकांश निर्देशक का होता है। नाट्यकार निश्चित रूप से एक विशेष शैली में नाटक लिखता है, उसका अपना शिल्प होता है तथापि निर्देशक को पूरी स्वतन्त्रता होती है कि वह इच्छानुसार इसका अतिक्रमण करे। पहले 'एवम् इन्द्रजित्' के कथ्य की बात लें। नाट्यकार का मूल उद्देश्य क्या है? क्या वह आज के जनमानस की हलचल को चित्रित-भर करना चाहता है या उसके माध्यम से कुछ और कहना चाहता है? क्या इन्द्रजित् की 'मृत्यु का वरण' करने की इच्छा प्रमुख बात है जिसे वह दर्शकों के सामने रखना चाहता है या मृत्यु का वरण न करके जीवन-पथ पर चलने की मानसी की प्रेरणा को वह उससे अधिक महत्त्व देना चाहता है? क्या यह पथ सामान्य-साधारण पथ है या तीर्थ-पथ, जिस पर चलने की दीक्षा कवि ने अपने जीवन के स्वर्ण-प्रात में ली थी और जिसे वह अपनी जीवन-सन्ध्या में पहुँचकर भी भुलाना नहीं चाहता? क्या कवि और इन्द्रजित् एक ही व्यक्तित्व के दो छिटके हुए रूप हैं? इन्द्रजित् की निराशा, घुटन और थकान क्या लेखक की अपनी निराशा, घुटन और थकान है? क्या जीवन की अनिवार्य परिणति यही है कि अमल-विमल-कमल की तरह जीवन की गाड़ी को खींचते चला जाये या इन्द्रजित् की तरह कुछ विशाल-विराट् करने की चेष्टा में सर्वथा टूटकर आस्था, विश्वास सबको खोकर जीवन को अस्वीकार करने की बात की जाये या कवि की तरह पथ की अन्तहीनता को जानते हुए भी, पथ के अन्त में तीर्थ नहीं है फिर भी तीर्थ-पथ तो है इस सत्य को स्वीकार करते हुए नियति को स्वीकार करके चलते चलना है? नाटक का अन्त आशावादी है, निराशावादी है या इन दोनों से भिन्न कुछ और––आशा-निराशाहीन?

ये कुछ सार्थक प्रश्न हैं जो 'एवम् इन्द्रजित्' को पढ़कर सामने आते हैं और जिनका निर्देशक-त्रय ने अपने-अपने ढंग से, अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार उत्तर देने का प्रयत्न किया है। वैसे तो इस नाटक की बांग्ला, गुजराती और हिन्दी में कई प्रस्तुतियाँ हो चुकी हैं, तथापि मैं शौभनिक (बांग्ला : कलकत्ता), अनामिका (हिन्दी : कलकत्ता) और दिशान्तर (हिन्दी : दिल्ली) की तीन प्रस्तुतियों की ही चर्चा कर रही हूँ, क्योंकि मैं इन्हें ही देख पायी हूँ। सर्वप्रथम इस नाटक को कोई तीन साल पहले मूल बांग्ला में देखा —निर्देशक एवं मुख्य अभिनेता थे गोविन्द गंगोपाध्याय। प्रस्तुति

अत्यन्त प्रभावपूर्ण थी और लम्बे अरसे तक दिमाग पर छायी रही, अगले 12 महीनों में दो बार और अपने पास खींचने में समर्थ हुई। गोविन्द बाबू ने निश्चित रूप से आशावादी दृष्टिकोण लिया था। जीवन की सारी उलझनों, दुखों के बाद भी जीवन स्वीकार करने के लिए है—किसी उज्ज्वल भविष्य का आश्वासन न होते हुए भी हमें चलना है क्योंकि सामने पथ पड़ा है—रुकने का अर्थ है मृत्यु, जीवन की गति को बेताला करने की निरर्थक चेष्टा ! बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से गोविन्द बाबू ने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया था यद्यपि इस प्रयत्न में इन्द्रजित् की घुटन और मानसिक द्वन्द्व कहीं खो गया था, जीवन को स्वीकार करने या न करने के निर्णय के बीच कसमसाता, छटपटाता उसका अन्तर कहीं अपने में ही डूब गया था, आत्म-लीन हो गया था। नाटक के प्रारम्भ से ही मंच पर लगी लाल लाइट का अन्त में —इन्द्रजित् के जीवन को स्वीकार करने का निर्णय कर लेने पर—हरी हो जाना, इस सूक्ष्म और गम्भीर तथ्य को प्रस्तुत करने का बड़ा भौंडा तरीका था। फिर भी यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शौभनिक की यह प्रस्तुति मन पर गहरी छाप छोड़ गयी थी और सच पूछिए तो 'एवम् इन्द्रजित्' नाटक और उसके लेखक बादल सरकार की श्रेष्ठता को अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर गयी।

दूसरी प्रस्तुति अनामिका की थी, निर्देशक श्यामानन्द जालान थे। अवश्य ही वे नाटक के कथ्य को समझने और पकड़ने की दिशा में विशेष सचेष्ट थे। बादल बाबू के साथ कई-कई दिनों तक विचार-विमर्श इसके साक्षी हैं। उन्हें आज के युवामन की घुटन और द्वन्द्व ही नाटक का मूल कथ्य लगा— कहीं भी आशा की क्षीण रेखा उन्हें नहीं दिखी। नाटक की अन्तिम कविता में कही गयी तीर्थ और तीर्थ-पथ की बात जैसे उनके लिए गौण थी या कहूँ नगण्य थी, सिसिफस की तरह पत्थर के टुकड़े को पहाड़ की चोटी पर पहुँचाने की व्यर्थ चेष्टा की पीड़ा ही प्रमुख थी। उनके लिए लेखक और इन्द्रजित् एक न होते हुए भी—split-self न होते हुए भी—एक-से ही थे, इन्द्रजित् की घुटन लेखक की ही घुटन थी। इस दृष्टि के परिणामस्वरूप चरित्रांकन बड़ा सशक्त हुआ, नाटक एक अत्यन्त गम्भीर स्तर पर प्रतिष्ठित हुआ, उसका कथ्य कहीं मन को झकझोर देनेवाला हुआ। किन्तु साथ ही बोझिल भी। अत्यन्त विवशतापूर्वक स्वीकार किया जीवन जिया गया तो क्या, न जिया गया तो क्या !! मंचित होने के पूर्व, पूर्वाभ्यास के दौरान नाटक का अन्त इतना बोझिल लगता था कि पूछिए मत। ऐसा लगता था जैसे मंच पर खड़े लेखक—इन्द्रजित्-मानसी जीवित व्यक्ति न हों, अभिशप्त सिसिफस की प्रेतात्मा ही हों, जीवित लाश हों। किन्तु मंचन

तक पहुँचते-पहुँचते यह घोर निराशा और व्यर्थता उतनी मर्मभेदी नहीं रह गयी, जीवन का स्वीकार जीवन का स्वीकार बना, मौत का नहीं। पता नहीं यह अन्तर निर्देशक की आन्तरिक प्रेरणा के कारण आया या दर्शकों एवं आलोचकों की प्रतिक्रिया के कारण, किन्तु मेरी दृष्टि में था सही दिशा में। यदि जीवन में आशा का इतना-सा भी आभास न हो तो इन्द्रजित् का मृत्यु का वरण करना ही एकमात्र संगति हो सकती है।

इसी संगति को रूपायित किया था मोहन महर्षि ने, दिशान्तर की प्रस्तुति में। उनकी दृष्टि में लेखक और इन्द्रजित् एक ही व्यक्तित्व के दो रूप थे, इन्द्रजित् के माध्यम से लेखक अपनी ही बात कहना चाहता था। और वह बात भी अत्यन्त निराशाभरी, आशा-विश्वास-आस्थाहीन एक ऐसे व्यक्ति की जो अपने केन्द्र से स्खलित हो गया था, जो ज्वलन्त उल्का की तरह आकाश भेदकर ऊपर उठने में सर्वथा असमर्थ साबित हुआ, इस चेष्टा में वह झुलसकर रह गया, न प्रकाश हुआ न ज्वाला!! ऐसे जीवन को लेकर क्या करना?? और इसीलिए नाटक के अन्त में (निर्देशक द्वारा आरोपित) लेखक इन्द्रजित् का गला घोंट देता है—मानो सबकुछ से ऊब-कर, थककर अपने को निःशेष कर दे रहा हो। इस अन्त को ले आने के लिए निर्देशक ने नाटक के अन्तिम कई पृष्ठों को छोड़ दिया था, पथ और चलना, तीर्थ और तीर्थपथ उसके लिए महत्त्वहीन हो गये थे। मुझे ऐसा लगा कि यह नाटक के कथ्य को बहुत अधिक खींचना था, बल्कि स्पष्ट कहूँ तो उसके साथ अन्याय करना था। नाटक का अन्तिम अंश कथ्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, उसे बाद देने का मतलब शरीर से आत्मा को बाद देना है। नाटक से सारी कविताओं को बाद देने के कारण ऐसा मतिभ्रम हुआ। इस भूल के कारण न तो नाटक की मूल आत्मा उभरकर आयी और न ही चरित्र (लेखक और इन्द्र का) पूरे आवेग और आन्तरिक शक्ति के साथ सामने आये। ओम शिवपुरी जैसे सशक्त अभिनेता और अन्यान्य कुशल सहयोगियों के बावजूद बात बनी नहीं। कलकत्ता के प्रदर्शन में अवश्य ही इन्द्र की हत्या नहीं करवायी गयी थी, तथापि अन्त के पर्याप्त अंशों को छोड़ देने के कारण नाटक तब भी मुण्डहीन ही था। अन्त अत्यन्त दुर्बल रहा।

नाटक एवं प्रस्तुतियों के शिल्प के सम्बन्ध में कुछ कहे बिना बात अधूरी ही रह जायेगी। लेखक ने अत्यन्त यथार्थवादी घटनाओं को अयथार्थवादी शिल्प के माध्यम से प्रस्तुत किया है। अत: अनेक स्थितियों, चरित्रांकन और बातचीत में जहाँ अत्यन्त यथार्थवादी पुट मिलता है वहीं उन्हें रूपायित करने में पर्याप्त कल्पना का योग अनिवार्य हो उठता है। नाटक में अनेक दृश्यों की योजना है, उन्हें यथार्थवादी शैली में बार-बार दृश्य-परिवर्तन

करके प्रस्तुत किया जाये तो अच्छा-खासा तमाशा बन जाये। उन्हें एक ही दृश्य-बन्ध पर प्रस्तुत करना अनिवार्य है, अतः निर्देशक एवं दर्शक दोनों की कल्पना सजग हो उठती है। इसी प्रकार इन्द्रजित् को छोड़कर अन्य सभी पात्र एकाधिक भूमिका का निर्वाह करते हैं। अत्यन्त सामान्य स्थूल परिवर्तन करके सर्वथा भिन्न व्यक्तित्व प्रस्तुत करना नाटक की दूसरी और मूक अभिनय उसकी तीसरी अनिवार्यता है। तीनों निर्देशकों ने इनका सफलता-पूर्वक निर्वाह किया। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं कि शौभनिक की प्रस्तुति में मूक-अभिनयवाले अंश सर्वाधिक सजीव एवं प्रभावपूर्ण थे। गोविन्द बाबू ने कुछ सामान्य चीज़ें, जैसे झाड़न, ताश आदि मंच पर ली थीं, श्यामानन्दजी ने उनको एकदम बाद दे दिया था, मोहन महर्षि ने लेखक के लिखने का साज-सामान पूरा दिया था। यह एक ऐसा नाटक है—(शायद, कोई भी नाटक ऐसा बना लिया जा सकता है)--जिसे इच्छानुसार शैली में उपकरणों को लेकर या बाद देकर प्रस्तुत कर सकते हैं। इस सिलसिले में अनामिका की प्रस्तुति विशेष उल्लेखनीय है। इसमें निर्देशक ने कुछ सफल प्रयोग किये जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था पात्रों को मंच पर सर्वथा अचल करवा देना—freeze करवा देना। इसके परिणामस्वरूप कहीं जीवन की स्थिरता का बोध हुआ, कहीं हमारी एकरूपता का और कहीं जीवन के अनवरत प्रवाह का। इसी प्रकार गोलाकार गति के द्वारा उन्होंने आदि-अन्तहीन जीवन, निरन्तर घूमती हुई पृथ्वी, सतत् चलायमान जीवन आदि तथ्यों का विभिन्न प्रसंगों में बोध करवाया! संगीत और आधुनिकतम पाश्चात्य नृत्य की अतिरंजित भंगिमाओं के बीच आज के जीवन में की जानेवाली बहुत-सी अर्थहीन बातों को कहलवाकर उन्होंने हमारे जीवन और हमारी बातों, दोनों की व्यर्थता को बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से मुखर किया था। साथ ही यह भी सही है कि सारी प्रस्तुति में भाव-भंगिमाओं एवं अंग-संचालन के क्षेत्र में अतिरंजना थी, जीवन के खोखलेपन को व्यक्त करनेवाली बनावटी हँसी अनेक स्थलों पर बहुत अधिक हो गयी थी, मूक-अभिनय की छोटी-छोटी बारीकियों की ओर कम ध्यान दिया गया था, अनेक स्थलों पर पात्र अनावश्यक रूप से हल्ला कर रहे थे। फिर भी यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि श्यामानन्दजी ने नाटक को सबसे अधिक समझा है, साहसपूर्वक कुछ सफल प्रयोग किये हैं।

अभिनय की दृष्टि से सम्भवतः शौभनिक की प्रस्तुति सर्वश्रेष्ठ थी, क्योंकि उनका टीम वर्क अच्छा था, अमल-विमल-कमल और मानसी अत्यन्त सजीव और सहज थे। लेखक के रूप में गोविन्द बाबू अमिट छाप छोड़ गये थे। हाँ, इन्द्र में वह आवेग नहीं था जो उस भूमिका के लिए अपेक्षित है।

सम्भवतः इसका कारण चरित्रांकन रहा हो। श्यामानन्दजी की प्रस्तुति में उनके लेखक के अतिरिक्त अन्यान्य भूमिकाएँ दुर्बल थीं—विशेषकर उनकी तुलना में अन्य सभी पात्र बचकाने लग रहे थे। इन्द्र अत्यधिक लाउड था, मानो वह अपनी बात गले के जोर पर मनवाना चाह रहा हो। अनेक स्थलों पर मानसी का संघर्ष और द्वन्द्व जैसे आरोपित और बलपूर्वक लादा गया लग रहा था। अमल-विमल-कमल और सहज हो सकते थे। दिशान्तर के कलाकारों का स्तर सामान्यतः अच्छा होते हुए भी उनमें वह शक्ति नहीं थी कि वे मन को छू पाते। ओम शिवपुरी जैसे कलाकार भी नाटक की भिन्न व्याख्या के कारण विशेष प्रभाव नहीं डाल पाये—कुछेक स्थलों को छोड़कर।

मुझे विश्वास है कि यह नाटक और लोकप्रिय होगा तथा अन्य कुशल निर्देशक इसके अन्यान्य आयामों को प्रस्तुत कर पायेंगे। कविताओं को बाद देकर इसे प्रस्तुत करने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए। कृति अपने-आपमें बड़ी सशक्त है। इसे पढ़ने, प्रस्तुत करने, देखने सभी में बड़े सुख एवं परितृप्ति का अनुभव होता है, जीवन के गहरे सत्य से साक्षात् होता है।

प्रतिभा अग्रवाल

निर्देशक का वक्तव्य

बादल सरकार के नाटकों के मंचन को देखकर मन में कहीं एक विद्रोह जागता था। लगता था ये नाटक एक उन्मुक्तता माँगते हैं जो कि इन्हें मिल नहीं पा रही है। और उसी विद्रोह का फल मेरा 'एवम् इन्द्रजित्' का प्रस्तुतीकरण था। मंचन के बन्धनों को तोड़कर हमने इस नाटक की आत्मा को लोगों के सामने रखने की कोशिश की। लोग बैठे रहे, देखते रहे, इससे लगता है कि शायद हम किसी हद तक सफल भी हुए। पहले लगता था कि आम दर्शक शायद इसे झेल न पायें। पर देखा कि बहुत-से तथाकथित आम दर्शकों ने भी इसे पसन्द किया,—समझा या नहीं—, यह तो नहीं मालूम, पर उन्होंने इसे अनुभव किया ऐसा कुछ अवश्य लगा।

मैं भी नाटक को पहले केवल भाँपता हूँ। समझने की कोशिश नहीं करता। जल्दी से पढ़ता हूँ, फिर आँखें बन्द कर लेट जाता हूँ। कुछ अटपटे

विचार, कई-एक विचित्र-से खाके चेतना में उभरते हैं। और यदि उसके बाद उसे खेलने की बहुत 'इच्छा' होती है तो उसके प्रस्तुतीकरण में जुट जाता हूँ। फिर भी बार-बार नहीं पढ़ता। साथी चुनकर सब एक साथ बैठकर पढ़ते हैं, उसे अनुभव करने की, समझने की भी कोशिश करते हैं। फिर उसे लेकर खेलने लगते हैं। एक दृश्य छोटा-सा किया, कुछ संवाद बोले—एकाध मुद्राएँ परखीं और पढ़ते रहे। एक खेल-सा हो जाता है हमारे लिए और नाटक जब तक याद होता है, तब तक हमारे दिमागों में उसकी एक हल्की-गहरी आकृति तैयार हो जाती है।

नाटक समझना हम तब शुरू करते हैं जब हम उसका पूरा रिहर्सल करने लगते हैं। तब भी उसे मोटे तौर पर ही समझ पाते हैं।

"यह जरूरी नहीं है कि आशारहित स्वीकार के पीछे कोई एक पहचानी हुई भावना हो, मन:स्थिति (emotion) हो, मसलन निराशा या वैराग्य। बीतता हुआ समय और उस समय की परिस्थितियाँ नयी मन:स्थितियों का निर्माण करती हैं। चार सौ वर्ष पहले कोई प्रेम शब्द को उस अर्थ में नहीं लेता था जिस अर्थ में आज या यों कहिए कि आज से 40 या 50 वर्ष पहले। यौन-भावनारहित प्रेम का उस समय कोई माने ही नहीं था।"

नाट्यकार बादल सरकार के इन शब्दों ने सहसा 'एवम् इन्द्रजित्' के रहस्य को हमारे सामने खोल दिया

जीवन की सन्ध्या में पहुँचा
मन मेरा यह भूल न जाये
तीर्थ नहीं, है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं, है केवल पथ ही
इसी तीर्थ-पथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

ये थीं 'एवम् इन्द्रजित्' की अन्तिम पंक्तियाँ। और बादल सरकार के उक्त मनोभाव को अभिव्यक्त करने के लिए इन शब्दों का चुनाव विशेषकर 'मूल मन्त्र' का तब भी खटका था, आज भी कहीं कष्ट देता है। पर जहाँ उन्होंने यह सब कहकर हमें दिशा दी, वहीं एक भारी प्रश्न भी सामने खड़ा कर दिया। उस मूलभाव को कैसे व्यक्त किया जाये? अपने अन्दर से कैसे अचीन्ही, बिना नाम की भावना को जगाया जाये? और अनुभव कर लेने से ही तो काम ख़त्म नहीं होता—अनुभव कराना ही तो उद्देश्य था। और यही कारण है कि हम बार-बार फिसल जाते थे—अब भी फिसल जाते हैं। कभी मानसी रो पड़ती है—कभी इन्द्रजित। कभी लेखक में ही गुरुआई जाग उठती है।

फिर सवाल रंगमंच का, दर्शकों का भी तो था। तटस्थ हो जाने से तो काम नहीं चल सकता। आध घण्टे बाद जम्हाई लेता हुआ दर्शक इधर-उधर यदि देखने लग जाये तो तटस्थ होकर संवाद या स्थितियाँ कैसे बोली जायें! उनमें रंग तो उभारने ही होंगे।

इन्हीं सब समस्याओं के बीच रास्ता ढूंढ़ता हुआ मेरा प्रस्तुतीकरण था। इस अर्थहीन जीवन की अर्थहीनता को भुलाकर और इसे पहचानते हुए भी अपने-आपको धोखा देकर कोई रह कैसे सकता है भला! तो क्या करे वह? मर जाये, आत्महत्या कर ले? जैसा कि इन्द्रजित् सोचने लगा था। या इस आशा में अपने को धोखा दे कि कभी तो सूरज उगेगा। पर सोचने-वाले संवेदनशील व्यक्ति के जीवन से आशा तो आज खत्म हो चुकी है। चांद और सूरज तो कोई पहेली नहीं रहे। न स्वर्ग रहा न नरक। ज़मीन के अन्दर, पाताल के नीचे तो पाताल है और उसके नीचे फिर ज़मीन। सर के ऊपर हवा है और फिर शून्य और फिर ऊपर उठते-उठते घूमकर शायद फिर वही हवा और फिर वही ज़मीन। पत्थर को ढकेलकर पहाड़ की चोटी पर ले जाने की चेष्टा से पहले ही हम जान गये हैं कि पत्थर तो वहाँ टिकेगा नहीं, लुढ़क ही जायेगा। और यदि कहीं टिक ही गया तो भी क्या? क्या लेकर जिये ऐसा व्यक्ति—जो कि आज का आदमी है—अणुबम की अनुपम भेंट!

तो क्या करे वह? मर जाये?

फिर? मरने से भी क्या? यदि न मरने से कुछ है न जीने से, तो जीयो ही क्यों न…शायद…

पर नहीं, शायद भी तो नहीं रहा, इसका खोखलापन भी हम जान गये हैं, हमें कोई आस्था नहीं है…

खोखला शायद ही सही, शायद तो है, स्वप्न तो है।

श्यामानन्द जालान

पात्र-परिचय

मौसी : शाश्वत माँ—आयु 50 वर्ष

लेखक : आयु 35 वर्ष

मानसी : शाश्वत नारी—पत्नी, प्रेयसी या प्रेरणा; उम्र 25-30 के आसपास।

अमल, विमल, कमल, इन्द्रजित् : आयु प्रारम्भ में 20 वर्ष, अन्त में 35 वर्ष। विभिन्न भूमिकाओं में भिन्न-भिन्न आयु एवं वेशभूषा में सामान्य परिवर्तन अपेक्षित होगा।

मंच-निर्देश

चूंकि पूरा नाटक एक विशेष शैली में लिखा गया है और इसका पर्याप्त अंश मूक-अभिनय एवं प्रतीकात्मक शैली में ही प्रस्तुत किया जा सकता है, अतः चाहें तो पूरे नाटक को ही बिना किसी उपकरण के प्रस्तुत किया जा सकता है। केवल मात्र बैठने के लिए कुछ सीटें या स्थान देना अनिवार्य होगा। यदि इसके अधिकांश को यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत करना चाहें तो निम्न सामग्री की आवश्यकता होगी—

प्रथम अंक— लिखने की मेज़-कुर्सी। उस पर कुछ किताबें, कुछ फ़ाइल, थोड़े क़ागज, कई-एक कापियाँ, कलमदान, कलम, घड़ी आदि। रद्दी की टोकरी, अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् के हाथ में आवश्यकतानुसार कापी-किताब। कालेज का घण्टा, मूँगफली। कुछ फुटकर पैसे। मानसी के हाथ में एक नयी किताब, यदि साक्षात्कार के लिए बैठे ज्ञानी-गुणियों के लिए टेबुल-कुर्सी देनी हो तो उसका पूरा सामान। चपरासी को बुलानेवाली छोटी घण्टी। दो पैकेट सिगरेट, दो दियासलाई।

द्वितीय अंक—ऑफ़िस का दृश्य। बड़े साहब के लिए टेबुल-कुर्सी। टेबुल पर टेलीफोन, अन्यान्य सामान। पहले अंक के अन्तवाला टेबुल ही काम दे सकता है। क्लर्कों के लिए चार टेबुल-कुर्सी। उन पर रखने का सामान— फ़ाइल, रजिस्टर, कागज़, पैड, कलमदान, पानी का गिलास, टाइपराइटर आदि। झाड़न। शार्टहैण्ड लेने के लिए छोटा पैड व पेंसिल। अखबार। कार की चाभी का गुच्छा।

तृतीय अंक— एक जोड़ी ताश। विदेशी—हवाई-पत्र। बार्ली का डिब्बा।

प्रथम अंक

टेबुल पर ढेर-से कागज फैले हैं---सामने कुर्सी पर दर्शकों की ओर पीठ किये लेखक बैठा लिख रहा है। शायद बहुत देर से लिख रहा है। मौसी का प्रवेश। वैसे कुछ नाम देने के लिए मौसी कह दिया गया है - माँ भी हो सकती है, बूआ, चाची बड़ी दीदी इनमें से भी कोई हो सकती है। मौसी हैरान आ गयी हैं, बेटे का हिसाब-किताब कुछ समझ में ही नहीं आता। वैसे न समझ में आना ही मौसी लोगों का धर्म है।

मौसी : यह तेरा क्या ढंग है, मेरी तो समझ में हो नहीं आता। (**लेखक निरुत्तर**) मैं पूछती हूँ खाना खायेगा या नहीं? हद हो गयी, मुझसे अब और नहीं होता। (**लेखक निरुत्तर**) बोलता क्यों नहीं?

लेखक : अभी आता हूँ।

मौसी : यह तो तू तीन बार कह चुका है। मैं अब और पुकारने नहीं आऊँगी, हाँ!

लेखक : मौसी, तुम भी तो यह बात तीन बार कह चुकी हो।

मौसी : जो मर्ज़ी आये सो कर। रात-दिन लिखना, लिखना, लिखना। न खाना, न पीना, खाली लिखे जाना। भगवान् जाने इतना लिख-लिखकर क्या होगा!

मौसी बड़बड़ाते हुए चली जाती है। लिखना कुछ देर पहले बन्द हो चुका है। लेखक उसे पढ़ता है, पढ़ते-पढ़ते उठकर आगे आता है। एक लड़की का प्रवेश। इसे मानसी नाम दिया जा सकता है।

मानसी : पूरा हो गया?

लेखक : ना।

मानसी : क्या लिखा, मुझे नहीं सुनाओगे ?
लेखक : कुछ नहीं लिखा।

कागज़ फाड़कर फेंक देता है।

मानसी : अरे, फाड़ डाला ?
लेखक : कुछ भी तो नहीं बना। मेरे पास लिखने के लिए कुछ भी नहीं है।
मानसी : कुछ नहीं है ?
लेखक : क्या लिखूँ ? किसे लेकर लिखूँ ? कितने आदमियों को मैं पहचानता हूँ, कितने लोगों की बातें मुझे पता हैं ?
मानसी : (दर्शकों को दिखलाकर) क्यों, इतने सारे लोग तो हैं ! इनमें से किसी को नहीं पहचानते ? किसी की बातें तुम्हें नहीं मालूम ?
लेखक : ये लोग ? हाँ, इनमें से शायद दो-चार को पहचानता होऊँ, अपने ही जैसे दो-चार लोगों को। पर उन्हें लेकर नाटक नहीं लिखा जा सकता।
मानसी : चेष्टा करके देखो न।
लेखक : बहुत चेष्टा कर चुका हूँ।

कागज़ के टुकड़े फेंककर लेखक वापस टेबुल के पास जाता है। कुछ देर रुककर मानसी लौट जाती है। अचानक घूमकर लेखक सामने की ओर बढ़ जाता है। प्रेक्षागृह में ठीक उसी समय देर से आये चार सज्जन अपनी सीट खोज रहे हैं। लेखक उन्हें पुकारता है।

लेखक : ज़रा सुनिए तो।

दर्शकगण पहली बार पुकारने से समझ नहीं पाये कि उन्हें ही पुकारा गया है।

लेखक : अरे ओ साहब, सुनिए न !
प्र. दर्शक : हमें कुछ कह रहे हैं ?
लेखक : जी हाँ, ज़रा दया करके इधर आइएगा।
द्वि. दर्शक : हम सब ?
तृ. दर्शक : स्टेज पर ?
लेखक : हाँ, आपसे एक ज़रूरी काम है। कुछ खयाल न कीजिएगा।

चारों स्टेज के पास आते हैं।

प्र. दर्शक : ऊपर किधर से आऊँ ?

लेखक : यह···यह रही सीढ़ी; चले आइए।

चारों मंच पर पहुँच जाते हैं।

लेखक : आपका नाम जान सकता हूँ ?
प्र. दर्शक : अमल कुमार बोस ।
लेखक : आपका ?
द्वि. दर्शक : विमल कुमार घोष ।

लेखक तृतीय दर्शक की ओर देखता है।

तृ. दर्शक : कमल कुमार सेन ।
लेखक : और आप ?
च. दर्शक : निर्मल कुमार···
लेखक : (अचानक चीखकर) नहीं।

स्तब्धता। चारों आश्चर्यचकित-से रह जाते हैं। एकदम स्थिर।

लेखक : अमल, विमल, कमल और निर्मल —यह नहीं हो सकता। आपका अवश्य ही कोई दूसरा नाम है। होना ही होगा। ठीक-ठीक बताइए, क्या नाम है आपका ?

मंच पर अन्धकार हो जाता है। अमल, विमल और कमल पीछे हटकर खड़े हो जाते हैं। मंच के बीच में चतुर्थ दर्शक रह जाता है। अन्धकार में लेखक का कण्ठस्वर सुनायी पड़ता है।

क्या नाम है आपका ?
च. दर्शक : इन्द्रजित् राय।
लेखक : तब निर्मल क्यों बताया था ?
इन्द्र : डर के मारे।
लेखक : डर ? किस बात का ?
इन्द्र : अशान्ति का। नियम के विपरीत कुछ करने से ही अशान्ति पैदा हो जाती है न !
लेखक : आप हमेशा ही निर्मल नाम बतलाते आये हैं ?
इन्द्र : नहीं, आज ही, अभी ही पहली बार बतलाया है।
लेखक : क्यों ?
इन्द्र : अब उम्र हुई न। उम्र होने पर आनन्द से डर लगता है, सुख से भी डर लगता है। इस उम्र में शान्ति की इच्छा होती है।

इन्द्रजित को अब घने मेघ के अन्तराल की आवश्यकता है।

लेखक : आपकी उम्र क्या होगी ?

इन्द्र : एक सौ वर्ष। दो सौ वर्ष। पता नहीं। मैट्रिकुलेशन के सर्टिफिकेट के अनुसार पैंतीस वर्ष।

लेखक : जन्म-स्थान ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : शिक्षा-दीक्षा ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : कर्म-स्थान ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : विवाह ?

इन्द्र : कलकत्ता।

लेखक : मृत्यु ?

इन्द्र : अभी होनी बाकी है।···

कुछ देर शान्ति रहती है, फिर अन्धकार में इन्द्र का स्वर उभरता है।

इन्द्र : ना···ठीक से तो नहीं मालूम।

धीरे-धीरे मंच पर प्रकाश होता है पर पूरे पर नहीं। इन्द्रजित् और उसके पीछे लाइन से मूर्ति की तरह अमल, विमल और कमल खड़े हैं। उनकी शून्य दृष्टि प्रेक्षागृह की पीछे की दीवार पर स्थिर है। लेखक दर्शकों की ओर मुड़ता है। एक बार सबकी ओर देखता है। फिर थके हुए अध्यापक की तरह एक स्वर में बोलना शुरू करता है।

लेखक : 1961 की मर्दुमशुमारी के अनुसार कलकत्ता की जनसंख्या है—2,92,12,891। इसमें से प्राय: ढाई प्रतिशत लोग ग्रेजुएट या और उच्च शिक्षित हैं। विभिन्न नामों से ये परिचित हैं। ये सभी मध्यवित्त हैं, यद्यपि इनके मध्यवित्त का पर्याप्त अन्तर है। ये सब बुद्धिजीवी हैं, यद्यपि बुद्धि ही जीविका का साधन होती तो इनमें से अधिकांश भूखों मर गये होते। ये शिक्षित हैं—यदि डिग्री को शिक्षा माना जाये तो। ये सब उच्च श्रेणी के हैं क्योंकि छोटे लोगों से अपना अलगाव ये अच्छी तरह समझते हैं। ये हैं अमल, विमल, कमल··· **(तीनों मंच छोड़कर चले जाते हैं—मानो मुक्ति मिली हो)** एवम् इन्द्रजित्।

(इन्द्रजित् एक बार लेखक की ओर देखता है, फिर अमल आदि के पीछे-पीछे चला जाता है। उसकी दृष्टि में पीड़ा और चाल में क्लान्ति है) सम्भव है इनके जीवन मे नाटक हो। छोटे-छोटे नाटक, ढेर सारे नाटक। यह भी सम्भव है कि आगामी युग में कोई शक्तिशाली नाट्यकार इन नाटकों की रचना करे।

मौसी का प्रवेश

मौसी : तू अब भी खाने आयेगा या नहीं ?
लेखक : नहीं।

मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश

मानसी : लिखा ?
लेखक : नहीं।

मानसी का प्रस्थान

लेखक : मैंने कई नाटक लिखे हैं। मैं और बहुत-से नाटक लिखना चाहता हूँ। पर...मैं दुखी-पीड़ित जनसाधारण की कहानी नहीं जानता। खेतों में काम करनेवाले किसानों को भी मैं नहीं पहचानता। साँप खेलानेवाले सँपेरे, सन्थाल मुखिया, मछुए—इनमें से किसी से भी तो मेरा परिचय नहीं है। अपने चारों ओर मैं जिन्हें देखता हूँ उनमें न रूप है, न रंग, न वस्तु। ये सब अनाटकीय हैं। ये तो अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् हैं।

मंच पर एकदम अन्धकार हो जाता है।

मैं अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् हूँ।

अन्धकार में समवेत स्वर फुसफुसाहट के रूप में उभरता है।

कण्ठस्वर : अमल, विमल, कमल एवम् इन्द्रजित्
अमल, विमल, कमल एवम् इन्द्रजित्
विमल, कमल एवम् इन्द्रजित्
कमल एवम् इन्द्रजित्
एवम् इन्द्रजित
इन्द्रजित
इन्द्रजित्
इन्द्रजित्

तेज वाद्ययन्त्र में कण्ठस्वर डूब जाता है। तेज रोशनी हो जाती है— ऐसी रोशनी जिसमें कोई भी छाया सौन्दर्य की सृष्टि न कर रही हो। मंच खाली है। वाद्ययन्त्र जैसे अचानक शुरू हुआ था वैसे ही अचानक बन्द हो जाता है। कालेज का घण्टा बजता है। इन्द्रजित् का प्रवेश। उसके 35 वर्ष के चेहरे पर कोई मेकअप नहीं है, किन्तु चालढाल से वह कम उम्र का लगता है। पीछे-पीछे अमल का प्रवेश। उसमें अध्यापक का-सा गाम्भीर्य है। अब से अमल, विमल और कमल कुछ-कुछ कठपुतली-से चलते हैं। भूमिका के अनुरूप भावभंगिमा और कण्ठस्वर हैं। फिर भी यान्त्रिकता-सी है हास्यकर है, फिर भी करुणा उत्पन्न करती है।

अमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

अमल : Everybody continues in it's state of rest or of uniform motion in a straight line unless it is compelled by an external impressed force to change that state.

घण्टा बजता है। अमल का प्रस्थान। इन्द्र खड़ा रहता है। विमल का प्रवेश।

विमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

विमल : Poetry in a general sense, may be defined to be the expression of the imagination.

घण्टी बजती है। विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश

कमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

कमल : निबन्ध-साहित्य के मूल उपादान हैं, तर्क, भाव-भाषा और विचारों की परिच्छन्नता, चिन्तन की श्रृंखला और तत्त्व तथा तथ्य का उपयुक्त समावेश।

घण्टी। कमल का प्रस्थान

इन्द्र : तत्त्व एवं तथ्य का उपयुक्त समावेश। तत्त्व एवं तथ्य का उपयुक्त समावेश। Expression of the imagination. Expression of the imagination. State of rest or of uniform motion. State of rest or of uniform motion. State of rest or of uniform motion.

हल्ला करते हुए अमल, विमल एवं कमल का प्रवेश। तीनों इन्द्र को घेरकर खड़े हो जाते हैं। तीनों इस समय तरुण हैं।

कमल : खिलाड़ी ही नहीं है? दो रन में आउट हो जाने से क्या खिलाड़ी ही नहीं रहा?

विमल : पर इसका मतलब यह तो नहीं कि ऐसा खेल खेलेगा! फिर दूसरे टेस्ट में भी क्या करके निहाल किया था?

कमल : देखो भाई क्रिकेट है— Game of glorious uncertainty— क्यों इन्द्र?

इन्द्र : हाँ, बिकुल्ल।

अमल : यानी, कुशलता कोई चीज ही नहीं है? वाह, तुम्हारे कहने से ही।

इन्द्र : कुछ नहीं है, यह किसने कहा?

विमल : जो भी कहो, फुटबाल कहीं अधिक एक्साइटिंग है।

इन्द्र : हाँ, सो ठीक है।

कमल : एक्साइटिंग तो टेक्सास मार्का फ़िल्म भी होती है। तब फिर अच्छी फ़िल्में क्यों देखते हो?

विमल : अमल, तुमने यूल बर्नर की कोई फ़िल्म देखी है?

अमल : सब-की-सब देखी हैं। भाई, कमाल का काम करता है। चाहे जितना मार्लेन ब्रैण्डो की तारीफ करो, यूल बर्नर के सामने वह कुछ भी नहीं है। इन्द्र, तुमने देखी है?

इन्द्र : हाँ, दो देखी हैं।

कमल : धत्तेरे की···मुड़मुण्डा।

अमल : जी हाँ, मुड़मुण्डा। अरे, खोपड़ी ऐसी खोपड़ी है इसलिए मुड़ाकर रखने की हिम्मत करता है।

विमल : पर भाई, खोपड़ी ऐसी खोपड़ी है कहने से तो कुछ और ही अर्थ निकलता है।

कमल : माने जैसे, आइन्स्टाइन जैसी खोपड़ी।

इन्द्र : आइन्स्टाइन की थ्योरी पर एक किताब देख रहा था। कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा।

अमल : आइन्स्टाइन ने कहा है कि डायमेन्शन तीन नहीं चार होते हैं।

विमल : चौथा डायमेन्शन टाइम बतलाया है न ?

कमल : क्या पता बाबा ! कालेज की फ़िज़िक्स ही नहीं पार पड़ रही है— ऊपर से फोर्थ डायमेन्शन। अमल, तुम्हारी प्रैक्टिकल बुक सब तैयार हो गयी ?

अमल : भैया की कापी पड़ी है, नकल मार दूँगा। कब सबमिट करनी है ?

विमल : तेरह तारीख के भीतर-भीतर। मैंने अभी शुरू ही नहीं की है। इन्द्र, तुम्हारी गाड़ी कहाँ तक पहुँची ?

इन्द्र : कल शुरू की है। एक बड़ी अच्छी किताब हाथ लग गयी थी, सो कोर्स की किताब दो दिनों से छू ही नहीं पाया।

कमल : कौन-सी किताब ?

इन्द्र : बर्नार्ड शॉ के कम्प्लीट प्लेज़।

अमल : बर्नार्ड शॉ ? वाह ! क्या चाबुक मारता है ! तुमने मैन एण्ड सुपर मैन पढ़ा है ?

विमल : मैंने केवल प्लेज़ प्लेज़ेण्ट पढ़ा है।

कमल : हम लोगों के प्रमथ बीसी ने भी कुछ इसी ढंग पर लिखना शुरू किया था।

अमल : अरे हटाओ, कहाँ कौन, कहाँ कौन ! कहाँ जी. बी. एस. और कहाँ प्र. ना. बी. !

विमल : प्रमथ बीसी पॉलिटिक्स ढुका देते हैं।

कमल : तो इसमें क्या बुराई है ? साहित्य में पॉलिटिक्स तो रहेगी ही— उसका रहना जरूरी है।

अमल : बिल्कुल नहीं। साहित्य सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का प्रतीक है। पॉलिटिक्स जैसी गन्दी चीज़ से साहित्य का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।

विमल : देखो भाई, गन्दी चीज़ शब्द पर मुझे आपत्ति है। गन्दगी भी यदि सत्य हो तो उसे बाद देकर साहित्य-रचना करना एस्केपिज़्म है। साहित्य होगा—जीवन की प्रतिच्छवि, रियलिस्टिक। इन्द्र, तुम्हारा क्या खयाल है ?

इन्द्र : मुझे कुछ ठीक से समझ में नहीं आता। यह तो मानता हूँ कि साहित्य रियलिस्टिक होना चाहिए पर वह जीवन का नग्न चित्र होगा, यह भी···

कमल : (अचानक) अरे, कितना बज गया, जानते हो ? साढ़े सात।

अमल : माइ गॉड। प्रैक्टिकल बुक तैयार करनी है। चलो, चलो।

विमल : हम लोगों का रास्ता तो उल्टी ओर है।

कमल : चला अमल।

अमल और कमल का प्रस्थान।

विमल : इन्द्र, घर नहीं जाओगे ?
इन्द्र : मुझे···मुझे कुछ और काम करते हुए घर जाना है।
विमल : किधर जाना है ?
इन्द्र : इधर।
विमल : उधर जाना था तो उन लोगों के साथ क्यों नहीं गये ?
इन्द्र : उस समय याद नहीं आया।
विमल : धत्तेरे की। अब अकेले-अकेले जाना होगा।

विमल का दूसरी ओर प्रस्थान। अब तक एकरंग तबले का एक बोल बज रहा था। अब जरा द्रुत हो गया। लेखक का प्रवेश

लेखक : अरे इन्द्र, तुम अभी तक बैठे हो ?
इन्द्र : हाँ।
लेखक : क्या सोच रहे हो ?
इन्द्र : कुछ नहीं।
लेखक : वे लोग आज नहीं आये ?
इन्द्र : आये थे।
लेखक : कौन-कौन ?
इन्द्र : अमल, विमल और कमल।
लेखक : क्या किया तुम लोगों ने ?
इन्द्र : गप्पें मारीं।
लेखक : क्या गप्पें मारीं ?
इन्द्र : इधर-उधर की, बहुत तरह की।
लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, फिज़िक्स, राजनीति, साहित्य ?
इन्द्र : ऐं ?···हाँ, क्रिकेट, सिनेमा, फिज़िक्स, राजनीति, साहित्य। पर तुम्हें कैसे पता चला ?

लेखक उत्तर नहीं देता। जेब से मूंगफली निकालकर देता है।

लेखक : लो, खाओ।
इन्द्र : क्या किया जाये, बोलो तो ?
लेखक : किसका क्या किया जाये ?
इन्द्र : पढ़ाई-लिखाई और अच्छी नहीं लगती।

लेखक : तो फिर क्या करना चाहते हो ?

इन्द्र : सो मालूम नहीं। कभी-कभी मन करता है सब छोड़-छाड़कर भाग जाऊँ।

लेखक : कहाँ ?

इन्द्र : पता नहीं कहाँ। कहीं बहुत दूर। वहाँ क्या होगा, यह भी पता नहीं —जंगल, मरुभूमि, बरफ का ढेर; कुछ पक्षी—पेंगुइन, आस्ट्रिच; कुछ जानवर—कगारू, जगुवर; कुछ मनुष्य—बेदुइन, एस्किमो, माउरी।

लेखक : सीधी-सी बात— सरल भूगोल परिचय—डी. पी. आई. द्वारा छठी श्रेणी के लिए निर्धारित।

इन्द्र : भूगोल से बाहर भी एक दुनिया है— वह दुनिया यहाँ नहीं है— कहीं और है—कहीं बहुत दूर—कहीं बाहर।

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, फिज़िक्स, राजनीति, साहित्य—इन सबसे बाहर ?

इन्द्र : हाँ, इन सबसे बाहर।

लेखक : तो चलो।

इन्द्र : कहाँ ?

लेखक : तुम्हीं ने कहा न कि सब छोड़-छाड़कर भाग जाना चाहते हो ?

इन्द्र : अभी ही ?

लेखक : नहीं तो फिर कब ?

इन्द्र : छोड़ो, फालतू की बातें मत करो—तुमसे कहकर ही भूल की।

लेखक : तुम्हारे पाकेट में कितने पैसे हैं ?

इन्द्र : आठ आने होंगे। क्यों ?

लेखक : मेरी पाकेट में सवा रुपया है। एक रुपये बारह आने में हावड़ा स्टेशन से जितनी दूर जा सकते हैं, चले जायेंगे, उसके बाद पदयात्रा।

इन्द्र : यह जानता कि तुम इस तरह मजाक उड़ाओगे तो तुमसे इन बातों की चर्चा ही नहीं करता।

लेखक : मैं एकदम सीरियस हूँ।

इन्द्र लेखक के मुख की ओर देखता है। वह सचमुच सीरियस है। इन्द्र दुविधा में पड़ जाता है।

इन्द्र : पर, माँ ?

लेखक : हाँ, सो तो है। माँ।

इन्द्र : इसके अलावा परीक्षा एकदम सर पर है।

लेखक : ठीक । परीक्षा के बाद बात करेंगे । लो, थोड़ी-सी और बची है।

बाकी मूँगफली देकर बाहर निकल जाता है । इन्द्रजित् शून्य दृष्टि से देखता खड़ा रहता हैं । नेपथ्य से मौसी का स्वर सुनायी पड़ता है —'इन्द्र' ।

इन्द्र : आया माँ ।

किन्तु हिलता नहीं । मौसी का प्रवेश

मौसी : क्यों रे, खायेगा नहीं ? मैं कब तक चौका लिये बैठी रहूँ ?
इन्द्र : अच्छा माँ···
मौसी : क्या ?
इन्द्र : अच्छा···मैं यदि···माने मुझे यदि कहीं चला जाना पड़े···
मौसी : तेरी तो सारी बातें ऐसी ही अटपटी होती हैं । चल, खाना खा ले, रसोई पड़ी-पड़ी ठण्डी हुई जा रही है ।

मौसी का प्रस्थान । नेपथ्य से पहले धीरे—फिर तेज स्वर में समवेत संगीत उभरता है । जिधर मौसी गयी थीं, उधर ही इन्द्र का प्रस्थान ।

गाना : एक दो तीन
एक दो तीन दो एक दो तीन (2 बार)
चार पाँच छः
चार पाँच छः पाँच चार पाँच छः (2 बार)
सात आठ नौ
सात आठ नौ आठ सात आठ नौ (2 बार)
नौ आठ सात छः पाँच चार तीन दो एक ।

गाने के बीच में लेखक का प्रवेश । गाने की अन्तिम पंक्ति के स्वर के साथ स्वर मिलाकर गाते हुए लेखक सामने पाद-प्रदीप के पास आकर एक ओर खड़ा हो जाता है ।

लेखक : (गाना रुकते ही) अनाटकीय—एकदम अनाटकीय । इन लोगों को लेकर नाटक नहीं लिखा जा सकता—कभी नहीं । ए अमल, विमल, कमल···

हो-हल्ला करते हुए तीनों आकर लेखक को घेर लेते हैं ।

अमल : अरे कवि ! क्या हालचाल है ?
लेखक : अच्छा ।

विमल : नया क्या लिखा, सो बतलाओ।
लेखक : कुछ खास नहीं।
कमल : अरे छिपाते क्यों हो ब्रदर ? डरते हो कि हम लोग नकल कर लेंगे? चिन्ता मत करो, हम लोग वह भी न कर सकेंगे, लिखने में वर्तनी की भूल कर बैठेंगे।

तीनों जोर से हँस पड़ते हैं।

लेखक : केवल एक छोटी-सी कविता लिखी है'
अमल : देखो, निकली न ! सुनाओ, सुनाओ।
विमल : काव्य-काकली शुरू करो हे कवि-शिरोमणि।
कमल : यदि हम लोगों की समझ में आ जाये तो फाड़ डालना और न आये तो किसी मासिक पत्रिका को भेज देना।

तीनों का अट्टहास

लेखक : सुनोगे ?
अमल, विमल, कमल : (**एक साथ**) हाँ-हाँ, ज़रूर।
लेखक : (कविता-पाठ करते हुए)

एक दो तीन
एक दो तीन दो एक दो तीन
चार पाँच छः
चार पाँच छः पाच चार पाँच छः
सात आठ नौ
सात आठ नौ आठ सात आठ नो

अमल : आगे ?
लेखक : नौ-आठ-सात-छः-पाँच-चार-तीन-दो-एक।
विमल : बोले जाओ –बोले जाओ।
लेखक : और तो नहीं है।
कमल : बस, इतना ही ?
लेखक : हाँ, बस, इतना ही।

जरा देर चुप रहने के बाद तीनों का अट्टहास

अमल : वाह, बहुत अच्छी कविता है !
विमल : अरे भाई, मँजा हुआ है हाथ है कवि का !
लेखक : समझ में आयी ?

कमल : गणित के क्लास में सुनाने से समझता। कविता है न, कैसे समझ आयेगी ?

तीनों का अट्टहास

लेखक : एक नाटक लिखने का इरादा कर रहा हूँ।

अमल : अचानक कविता छोड़कर नाटक ?

लेखक : अचानक नहीं, मैं काफी दिनों से सोच रहा हूँ।

विमल : लिख डालो, लिख डालो। बीशु दा को पकड़ करके यदि री-यूनियन में लगवा दो तो···

कमल : बीशु दा बड़े खुचड़हे हैं। सनत चौधरी—फोर्थ ईयर का–पहचानते हो न ? उसने काफी अच्छा नाटक लिखा था—पर बीशु दा को पसन्द ही नहीं आया। बोले—ड्रैमेटिक क्लाइमेक्स ठीक से नहीं उभार पाये हो।

अमल : क्या नाटक लिखोगे ? सामाजिक ?

लेखक : सामाजिक माने ?

विमल : सामाजिक नहीं जानते ? तब फिर क्या लिखोगे ?

कमल : सामाजिक माने—आज के युग का—माने हम लोगों के समय का···

लेखक : हाँ, हम लोगों को लेकर ही लिखूंगा।

अमल : प्लाट क्या सोचा है ?

लेखक : प्लाट नहीं है।

विमल : ओहो, अच्छा थीम बतलाओ न।

लेखक : थीम ? ···माने यही हम लोग।

कमल : अच्छा, हम लोग से मतलब ?

लेखक : मतलब···माने तुम लोग, इन्द्रजित्, मैं···

अमल : हम लोगों को लेकर नाटक लिखोगे ? तब हो चुका तुम्हारा नाटक लिखना।

विमल : हम लोगों के जीवन में नाटक है क्या ?

कमल : अरे नाट्यकारजी, हम लोगों को लेकर लिखा नाटक तो स्त्री-चरित्र-वर्जित हो जायेगा।

तीनों का अट्टहास

अमल : झूठ क्यों बोलते हो कमल ? पास के मकानवाली तुम्हारी नायिका?

विमल : हाँ, मैं तो भूल ही गया था। कहाँ तक बात बढ़ी, कमल ?

कमल : अरे, मेरा तो खिड़की-काव्य दूर से ही रचा जा रहा है। अमल कितना बड़ा छिपा रुस्तम है, यह खबर है तुम लोगों को ?
पिछली पूजा में पुरी में क्या हुआ था, पूछो इससे।
विमल : क्यों अमल ? यह खबर तो हम लोगों के कानों तक पहुँची ही नहीं !
अमल : अरे छोड़ो···वह सब···
कमल : बोलो न राजा बेटा···ऐसे क्यों करते हो···

तीनों खिसककर एक ओर होकर धीरे-धीरे बातें करते हैं। लेखक सुनता है, मगर थोड़ी दूर से। मानसी एक ओर से प्रवेश करती है और दूसरी ओर चली जाती है। तीनों गर्दन घुमाकर उसे देखते हैं। फिर तीनों सिर-में-सिर जुटाकर न जाने क्या कहते हैं। बात पूरी होने पर हँसी। मानसी का पुनः प्रवेश— इस बार दूसरी लड़की की भूमिका में है–हाथ का बैग, चलना-फिरना सब भिन्न है। फिर वही मूक अभिनय और तनिक और मजा लेते हुए ज़ोर की हँसी। इसके बाद एक और सीधी-सादी लड़की के रूप में मानसी का प्रवेश। इस बार इन्द्रजित् साथ है। सब चुप हते हैं। दृष्टि में कौतूहल और ईर्ष्या का भाव उभरता है। मानसी और इन्द्रजित् बातें करते हुए चले जाते हैं।

अमल : देखा ?
विमल : तभी मैं कहूं कि इन्द्र कई दिनों से बदला-बदला क्यों लगता है !
कमल : Sinking Sinking Drinking water. ए कवि, देखा ?
लेखक : देखा।
अमल : क्या समझे ?
लेखक : कि नाटक स्त्री-चरित्र-वर्जित नहीं होगा।
विमल : इन्द्र को हीरो बना डालो और हम लोगों को मरे सैनिक।
कमल : हिरोइन कौन थी, बता सकते हो ?
अमल : क्या पता भाई ! इन्द्र तो हमें कुछ बताता नहीं।
विमल : हाँ, बड़ा चुप्पा लड़का है।
कमल : चुप्पा नहीं घमण्डी है। अपने को ऊँचे स्तर का समझता है। मैं ऐसे लोगों की नस-नस पहचानता हूँ।
अमल : कवि, तुम पहचानते हो ?
लेखक : किसे ?
विमल : क्या हुआ, मूड आ गया क्या ? अरे, अपने नाटक की हिरोइन को ?
लेखक : उसका नाम मानसी है।

कमल : यह लो। कवि को मालूम है न। इन्द्र ने परिचय करवा दिया लगता है ?

लेखक : ना।

अमल : हमें धप्पा दे रहे हो, कवि ?

लेखक : विश्वास करो, मैंने उसे पहली बार देखा है।

विमल : अच्छा छोड़ो, इन्द्र ने तुम्हें क्या-क्या बतलाया है, सो बोलो।

लेखक : उसने कुछ नहीं बतलाया है।

कमल : हाँ न ! पहली बार देखा है, इन्द्र ने कुछ बतलाया नहीं है, बस नाम मानसी है।

लेखक : उसका नाम मुझे नहीं पता। मेरे मन में आया कि उसका नाम मानसी है, सो कह दिया।

अमल : बा···बा···। यह कवि कब कविता करता है और कब स्वस्थ रहता है, भगवान् जाने।

लेखक : अच्छा, नाटक का नाम क्या रखा जाये ?

विमल : सबसे पहले नाम ही ?

कमल : नाम पहले ही तो रहता है। तुम्हीं बोलो न, तुममें तो नामकरण करने का अच्छा नैक है।

लेखक : मैं सोचता हूँ अमल-विमल-कमल-इन्द्रजित् और मानसी नाम दे दूँ।

अमल : ओह, जिल्द पर अटेगा ही नहीं।

विमल : हम लोगों को इसमें क्यों घसीटते हो ? हम लोग तो मरे सैनिक हैं।

कमल : और क्या ? इससे तो अच्छा है—इन्द्रजित् और मानसी।—उठो भाई, जाना नहीं है ?

अमल : कहाँ ?

विमल : कमल, चाय पिलाओगे ?

कमल : पिलाऊँगा। चलो।

तीनों का प्रस्थान

लेखक : इन्द्रजित् और मानसी। इन्द्रजित् और मानसी। (**दर्शकों को सम्बोधित करते हुए भाषण देने की मुद्रा में**) आप लोग जानते ही हैं कि इन्द्रजित् और मानसी को लेकर नाना देशों में नाना युगों में अनेक नाटक लिखे गये हैं—पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, सुखान्त, दुखान्त। न जाने कितने नामों में, कितने रूपों में समाज के विभिन्न स्तरों से इन्द्रजित् और मानसी आये हैं, उन्होंने एक-दूसरे को प्यार

किया है। न जाने कितने सुख-दुख, मिलन-विरह, ईर्ष्या-अभिमान और कितने ही जटिल मानसिक घात-प्रतिघातों के बीच इनका नाटक विकसित हुआ है। इन्द्रजित और मानसी का प्रेम—एक चिरन्तन नाटकीय उपादान।— इन्द्रजित।

इन्द्रजित् का प्रवेश

इन्द्र : क्या हुआ ? चीख क्यों रहे हो ?

लेखक की नाटकीय वक्तृता और अतिनाटकीय पुकार के बाद इन्द्र का स्वर जैसे बड़ा बेसुरा सा लगा। लेखक फिर भी नाटकीयता बनाये रखने की चेष्टा में है।

लेखक : बोलो इन्द्रजित् !
इन्द्र : क्या बोलूँ ?
लेखक : अपनी कहानी। जो कहानी चिर-पुरातन है फिर भी चिर-नवीन, जो महाभारत के युग से आरम्भ करके...
इन्द्र : कविता छोड़कर सीधी सरल भाषा में अपनी बात कहोगे ? तुम क्या जानना चाहते हो ?

लेखक का आवेग तब तक काफी दूर तक शान्त हो चुका है।

लेखक : तुम्हारी और मानसी की कहानी।
इन्द्र : मानसी ? मानसी कौन ?
लेखक : जिसके साथ तुम्हें उस दिन रास्ते में जाते देखा था।
इन्द्र : ओ ! देखा था ?...पर उसका नाम तो मानसी नहीं है ? उसका नाम है...
लेखक : उसके नाम की जरूरत नहीं है। मैंने उसका नाम मानसी रखा है।
इन्द्र : तुम्हारे नाम रखने का क्या मतलब है ? उसके मां-बाप ने उसका नाम...
लेखक : मां-बाप कुछ भी नाम रखा करें, उससे क्या बनता-बिगडता है ? तुम बतलाओ न !
इन्द्र : क्या बतलाऊँ ?
लेखक : अपनी और उसकी बातें। वह तुम्हारी कौन है ?
इन्द्र : बहन है।
लेखक : (जरा रुककर) बहन ?
इन्द्र : हाँ, मौसेरी बहन।

लेखक : मौसेरी बहन ? क्यों ?

इन्द्र : क्यों माने ? उसकी माँ मेरी मौसी हैं, इसलिए।

लेखक : नहीं नहीं···पर वह तुम्हारे साथ क्यों ?

इन्द्र : घर आयी थी, उसे पहुँचाने जा रहा था। ऐसे तो बराबर ही जाता हूँ।

लेखक : ओ···तो फिर···तो फिर उसका नाम मानसी नहीं है ?

इन्द्र : कह तो चुका हूँ कि नहीं।

लेखक : मुझे ऐसा लगा था कि तुम दोनों आपस में बातें कर रहे थे।

इन्द्र : बातें तो कर ही रहा था।

लेखक : खूब घनिष्ठता से बातें कर रहे थे।

इन्द्र : (हँसकर) तुम्हें ऐसा लगा था ? सो, हो सकता है करता रहा होऊँ। उससे बातें करना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। **(अक्सर सीधे रास्ते से उसे घर न पहुँचाकर)**

लेखक : अच्छा, उससे बातें करना अच्छा लगता है ? क्यों ?

इन्द्र : अब, इस क्यों का मैं कैसे उत्तर दूँ ! सारे दिन जैसी बातें होती रहती हैं उनसे भिन्न तरह की बातें होती हैं—शायद इसीलिए।

लेखक : क्रिकेट, राजनीति, साहित्य, इनकी बातें नहीं ?

इन्द्र : ना, क्रिकेट, राजनीति, साहित्य नहीं। कम-से-कम हर समय तो नहीं।

लेखक : तो फिर क्या बातें होती हैं ?

इन्द्र : बहुत-सी बातें होती हैं। मैं अपनी बातें करता हूँ—अपने परिचितों की बातें, अपने दोस्तों की बातें। वह···वह भी अपने घर की बातें, अपनी सहेलियों की बातें, कालेज की बातें करती है।

लेखक : और ?

इन्द्र : और क्या ? तुम्हारे साथ क्या बातें होती हैं ?

लेखक : क्रिकेट, सिनेमा, राजनीति···

इन्द्र : ना···हर समय तो नहीं। और बहुत-सी बातें भी होती हैं। तुम्हारे लेखन की बातें, लोगों की बातें, भविष्य की बातें—तरह-तरह की इच्छा-अनिच्छा की बातें।

लेखक : हाँ, वही पेंगुइन-कंगारू, एस्किमो की बातें ?

इन्द्र : हाँ, क्यों नहीं ? क्या मैं वे बातें सबसे कर सकता हूँ ?

लेखक : मानसी से कर सकते हो ?

इन्द्र : उसका नाम···

लेखक : मुझे पता है कि उसका नाम मानसी नहीं है। पर मैं यदि उसे

मानसी ही कहूँ तो तुम्हें कोई आपत्ति है ?

इन्द्र : (हँसकर) नहीं, कोई आपत्ति नहीं है। वरन् यह नाम अच्छा ही लगता है। उसके असली नाम में इतना काव्य नहीं है।

लेखक : तब बतलाओ।

इन्द्र : तुम क्या जानना चाहते हो ?

लेखक : मुझे जो कुछ बतला सकते हो वह उसे भी बतला सकते हो !

इन्द्र : सकता हूँ नहीं, बतला चुका हूँ। उससे और भी बहुत-कुछ कहता हूँ जो तुमसे नहीं कह सकता।

लेखक : मुझसे नहीं कह सकते ?

इन्द्र : कह ही नहीं सकता, यह तो नहीं, पर कभी कहा नहीं यह सच है। कोई खास बात बतलाने लायक है, सो नहीं। इधर-उधर की बातें। कितने ही विचार-प्रश्न। कुछ अच्छा लगने की बातें, कुछ खराब लगने की बातें। बहुत-सी बहुत ही साधारण छोटी-मोटी घटनाओं की बातें।

लेखक : मानसी तुम्हारी मित्र है ?

इन्द्र : मित्र ? हाँ, मित्र कह सकते हो। उसके साथ बातें करना मुझे अच्छा लगता है। बहुत बार बातें करके जी हल्का हो जाता है। यह जो सारा दिन चलता रहता है···हर रोज़ वहीं का वहीं···(सहसा लेखक की ओर मुड़कर) अच्छा, तुम्हें कभी नहीं लगता ?

लेखक : क्या ?

इन्द्र : कि यह जो कुछ चल रहा है, इसका कोई अर्थ नहीं है ? एक विराट् चक्का बस घूम रहा है और घूम रहा है। और हम लोग भी उसके साथ-साथ चक्कर काटे जा रहे हैं।

लेखक : एक-दो-तीन, एक-दो-तीन, दो-एक-तीन

इन्द्र : क्या कहा ?

किन्तु तब तक एक-दो-तीन संगीत शुरू हो चुका है। अमल का प्रोफेसर के रूप में प्रवेश

अमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।

इन्द्र : यस सर।

अमल : What is the specific gravity of iron ?

इन्द्र : Eleven point seven, Sir.

(घण्टी। अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश)

विमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।
इन्द्र : यस सर।
विमल : Who was Mazzini.
इन्द्र : One of the founders of modern Italy.

घण्टी। विमल का प्रस्थान। तुरन्त कमल का प्रवेश

कमल : रोल नम्बर थर्टी फोर।
इन्द्र : यस सर।
कमल : भारतीय वैराग्य भाव ने प्राचीन भारत के साहित्य को किस रूप में प्रभावित किया था?
इन्द्र : प्राचीन साहित्य में जो प्रक्षिप्तांश की अधिकता मिलती है, उसका मूल कारण भारतीय अनासक्ति ही प्रतीत होती है। वर्णन, तत्त्वावलोचन और अवान्तर कथाएँ कहानी के स्वच्छन्द प्रवाह को निरन्तर बाधित करती चलती हैं।

कमल इस बीच चला गया है। वाद्ययन्त्र में इन्द्र का स्वर डूब जाता है। हो-हल्ला करते हुए अमल का प्रवेश। अब वह तरुण है।

अमल : इन्द्र, मेरी प्राक्सी दे देना, मैं सिनेमा जा रहा हूँ।
इन्द्र : अच्छा।

अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश

विमल : इस शनिवार को अपने केमिस्ट्री के नोट्स दे सकोगे, इन्द्र?
इन्द्र : हाँ, ले लेना।

विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश

कमल : तुम्हारे पास एक रुपया है, इन्द्र? सोमवार को लौटा दूंगा।
इन्द्र : आज तो नहीं है, कल ला दूंगा भाई।

कमल का प्रस्थान। मौसी का प्रवेश

मौसी : थाली परोसूँ?
इन्द्र : ज़रा देर बाद माँ!
मौसी : अब और कौन-सी वेला होगी, इन्द्र! खा-पीकर छुट्टी करो, बाबा।

मौसी का प्रस्थान। वाद्य-संगीत पुनः तीव्र होता है—फिर नौ-आठ-

सात छः-पाँच-चार-तीन-दो-एक पर आकर शेष होता है।

इन्द्र : हम सब चक्कर काट रहे हैं, और चक्कर काटे जा रहे हैं।
मौसी : (नेपथ्य से) इन्द्र !
इन्द्र : आया माँ।

इन्द्र का प्रस्थान। मौसी का प्रवेश

मौसी : तुम खाना खाओगे या नहीं।
लेखक : नहीं।

मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश

मानसी : लिखना हुआ, कवि ?
लेखक : नहीं।

मानसी का प्रस्थान

लेखक : एक-दो-तीन। अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्। एवं मानसी। घर से स्कूल—स्कूल से कालेज—कालेज से दुनिया। सब बड़े हो रहे हैं और घूम रहे हैं। घूम रहे हैं और घूमे जा रहे हैं। एक-दो-तीन-दो-एक। अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्।

अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् आकर परीक्षा देने बैठे हैं। स्टूल और टेबुल। प्रश्नपत्र और कापी। लेखक अध्यापक के रूप में घूम-घूमकर निगरानी कर रहा है। घण्टा बजता है।

लेखक : Time-up. Stop writing please.

वे जल्दी-जल्दी लिखे ही जा रहे हैं। लेखक एक-एक करके सबकी कापियाँ छीनता-सा है। वे लोग बिना आवाज़ के परीक्षा की चर्चा करते हुए चले जाते हैं—संशय-भय, हताशा का भाव।

लेखक : स्कूल से कालेज—कालेज और परीक्षा—परीक्षा और पास। फिर दुनिया।

अमल, विमल, कमल और इन्द्रजित् का प्रवेश। लेखक पीछे टेबुल-कुर्सी ठीक करता है।

अमल : पास होने के बाद क्या करोगे ?
विमल : पहले पास तो होऊँ—फिर आगे की सोचूंगा।

कमल : पास होऊँ चाहे फेल, मुझे नौकरी ढूँढ़नी ही है। बाबूजी इस साल रिटायर कर रहे हैं।

अमल : ढूँढ़ने से ही नौकरी मिल जायेगी क्या ? रोज़ ही अखबार देखता हूँ, कुछ भी तो काम लायक नहीं दिखता।

विमल : तुम्हें क्या चिन्ता है ? मुझे तो तीन-तीन बहनों की शादी करनी है।

कमल : अब तक मज़े में रहा। जैसे-जैसे रिज़ल्ट निकलने का दिन पास आता जा रहा है, वैसे-वैसे मेरे गले से रोटी नहीं उतरती।

लेखक : अमल कुमार बोस।

अमल खुशी से चीत्कार कर उठता है। सब उसकी पीठ थपथपाकर बधाई देते हैं।

विमल कुमार घोष।

फिर वही पुनरावृत्ति

कमल कुमार सेन। इन्द्रजित् राय।

प्रत्येक बार पारस्परिक बधाई। मौसी का प्रवेश। सब उनके पैर छूते हैं। मौसी आशीर्वाद देकर चली जाती है। वे चारों भी हो-हल्ला करते हुए चले जाते हैं।

लेखक : इस बार दुनिया। इन कुसियों पर बड़े-बड़े ज्ञानी-गुणी लोग बैठते हैं—परीक्षा लेते हैं—देखते हैं कि कौन-सा व्यक्ति कितने काम का है। और दरवाज़े से बाहर उस लम्बी बेंच पर बैठते हैं—अमल, विमल, कमल। एवं इन्द्रजित्। (**अमल, विमल और कमल घुसकर बेंच की ओर बढ़ते हैं**) अभी नहीं, अभी नहीं। एक मिनट, एक मिनट और।

तीनों लौट जाते हैं।

भूल गया था। इसके पहले थोड़ा-सा और है। वे कुसियाँ वहाँ नहीं हैं। बेंच की बात भी भूल जाइए। यहाँ पर हरी-हरी घास है—ये सब पेड़ हैं। और उधर उस पेड़ की घनी चोटी पर सिन्दूरी रेखा खिंची है। जो सूर्य रोज़ उगता है, वही आज भी उगा था, इस समय अस्त हो रहा है। उधर···उस ओर, उन डालों के बीच एक गहरी सिन्दूरी रेखा।

इसी बीच इन्द्रजित् और मानसी भीतर आये हैं। वे घने पेड़ के नीचे

बैठ गये हैं। मानसी के हाथ में एक किताब है। लेखक सिन्दूरी रंग को देखते-देखते चला जाता है।

मानसी : तुमने मुझे यह किताब क्यों दी? उल्टे मुझे तुम्हें देनी चाहिए थी।
इन्द्र : क्यों ?
मानसी : वा···रे, तुम पास हुए हो सो मैं ही तो दूँगी।
इन्द्र : कहीं लिखा है क्या कि मेरे पास होने पर तुम्हें उपहार देना होगा, मेरे देने से नहीं चलेगा ?
मानसी : लिखा कहाँ होगा ! ऐसा ही नियम है।
इन्द्र : खूब नियम मानती हो न ?
मानसी : (हँसकर) तुम मानने कहाँ देते हो ?
इन्द्र : मानना अच्छा लगता है ?
मानसी : लड़कियों को मानना ही पड़ता है।
इन्द्र : लड़कियों को––यह बात बहुत बार तुम्हारे मुंह से सुन चुका हूँ। लड़कियों को नियम मानना होता है। पुरुषों के न मानने से चल सकता है पर स्त्रियों को मानना ही होता है।
मानसी : मैंने क्या कुछ झूठ कहा ?
इन्द्र : पता नहीं। मैं भी मानता हूँ, बहुतेरे नियम मानता हूँ। पढ़ाई-लिखाई करनी चाहिए की। परीक्षा देनी चाहिए––दी। नौकरी करनी चाहिए––करूँगा। यह सब नियम-पालन ही तो है। हाँ, यह ठीक है कि नियम न होने पर भी नौकरी तो जरूर करता।
मानसी : क्यों ?
इन्द्र : कई कारण हैं। पहला यह कि अपने पैरों पर खड़ा हो सकूँगा। घर के रुपये से पढ़ना-लिखना मुझे कैसा लगता है, यह मैं तुम्हें बतला ही चुका हूँ।
मानसी : और क्या कारण है ?
इन्द्र : बहुत-से हैं। अच्छा, तुम एक बात बतलाओ तो।
मानसी : क्या ?
इन्द्र : सभी तो मानता हूँ। पर क्या नियम मानना होगा, यह बात भी माननी होगी ?
मानसी : न मानकर क्या करोगे ?
इन्द्र : नियम से घृणा करूँगा। कम-से-कम इतना तो बचना ही चाहिए।
मानसी : इससे लाभ ?

इन्द्र : जिस डोरी से चारों ओर जकड़ा हुआ हूँ, उसकी पूजा करने से भी क्या लाभ ?

मानसी : पूजा करने को कौन कहता है ?

इन्द्र : यदि यह कहा जाये कि डोरी ही नियम है और उसे मानना उचित है, तो फिर पूजा करने में और बाकी क्या रहा ?

मानसी : अच्छा, तुम क्या करना चाहते हो, सो तो बताओ।

इन्द्र : पता नहीं। इस बन्धन को टुकड़े-टुकड़े कर डालना चाहता हूँ। चारों ओर से यह जो ऊँची दीवार जकड़े हुए है, उसे चूर-चूर कर डालना चाहता हूँ।

मानसी : अच्छा, तुम्हारी इतनी नाराज़गी किस पर है ?

इन्द्र : दुनिया पर, चारों ओर के लोगों पर। तुम लोग जिसे समाज कहती हो न, उस पर और उसकी व्यवस्था पर। मैंने तुमसे लीला की चर्चा की थी, याद है ?

मानसी : जिसके पति को टी. बी. हो गयी ?

इन्द्र : हाँ। काफी दिन हुए उसके पति की मृत्यु हो गयी। उसके ससुराल-वालों ने उसे घर से निकाल दिया।

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : कुछ दिनों तक रखा था। प्राविडेण्ट फण्ड और इंश्योरेंस का कुछ थोड़ा-सा रुपया पाना था। बस, तब तक रखा, फिर थोड़ा-बहुत जो गहना वगैरह था, सब छीन-छानकर उसे घर से निकाल दिया।

मानसी : फिर ?

इन्द्र : दूर के रिश्ते के किसी जीजाजी के यहाँ गयी थी। उनकी एक छोटी-सी दूकान है। सुना है कि बहुत-से चोरी के काम में उनकी दुकान और वे लगे रहते हैं।

मानसी : उस लड़की का क्या होगा ?

इन्द्र : क्या होगा नहीं, जो होना था सो हो चुका। कल ही खबर मिली, पर है तीन महीने पुरानी। बतला सकती हो यह कैसा नियम है ? (**मानसी निरुत्तर**) जिस स्टापेज से मैं बस पकड़ता हूँ, वहीं एक दिन एक सात-आठ साल के लड़के ने मुझे पकड़ा, जूता पालिश करेगा। उसकी गोद में कोई साल-भर का एक लड़का था, पालिश मे सने एक चिथड़े से खेल रहा था। (**मानसी चुप है**) मैंने पालिश नहीं करवायी, एक पैसा भी नही दिया बल्कि डाँटकर उसे दूर हटा दिया। यदि और तंग करता तो शायद मार भी बैठता।

मानसी : (**इन्द्र का हाथ पकड़ते हुए**) पर क्यों ?

इन्द्र : पता नहीं। मैं नहीं जानता कि किसे मारना चाहिए। उसे नहीं मारना चाहिए, यह समझता हूँ, फिर भी शायद उसे मार बैठता। वहाँ नियम का पालन शायद मुझसे न होता। जिस नियम के अनुसार सात साल के बच्चे को पालिश करनी पड़े और साथ ही गोद के भाई की देखरेख करनी पड़े, उस नियम को मैं नहीं मान सकता।

मानसी : किन्तु यह तो अलग बात है।

इन्द्र : अलग कैसे है ? इसी नियम का एक दूसरा रूप तुम्हारे घर में चलता है, वहाँ के सारे नियम तुम मानती हो और बोलती हो कि मानना होता है।

मानसी : (मुलायम स्वर में) तुम क्या मुझे डाँटोगे ही ?

इन्द्र : (ज़रा देर चुप रहकर) मैं तुम्हें डाँट नहीं रहा हूँ, यह तुम जानती हो। (मानसी चुप रहती है) नहीं जानती ?

मानसी : जानती हूँ।

इन्द्र : फिर इस तरह क्यों बातें करती हो ?

मानसी : तुम्हें ऐसे देखकर मुझे न जाने क्यों डर लगता है।

इन्द्र : कैसे देखकर ?

मानसी : यही गुस्सा करते हुए। नियम के ऊपर गुस्सा करते हुए।

इन्द्र : (ज़रा-सा हँसकर) इस गुस्से का कोई मूल्य नहीं है। यह गुस्सा अन्धा है, अक्षम है; यह तो दीवार से माथा फोड़ने-जैसा है।

मानसी : तब फिर खुद ही क्यों अपने को इस तरह क्षत-विक्षत करते हो ?

इन्द्र : तुमने बाइबिल पढ़ी है ?

मानसी : बाइबिल ?

इन्द्र : ज्ञान-वृक्ष के फल की कहानी जानती हो ? जिस फल को खाकर एडम और ईव स्वर्गच्युत हुए थे !

मानसी : जानती हूँ।

इन्द्र : मैं भी यदि ज्ञान-वृक्ष का फल न खाता तो तुम्हारे नियमोंवाले इस समाज के स्वर्ग में सुख से रहता। अब तो दीवार से सर फोड़ने के सिवा और कोई उपाय ही नहीं है।

कुछ देर दोनों चुप रहते हैं।

मानसी : कभी-कभी सोचती हूँ तुम न होते तो मेरा क्या होता।

इन्द्र : क्यों ?

मानसी : तुम शायद सुनकर गुस्सा करोगे। मैं बहुत-कुछ मान लेती हूँ क्योंकि तुम हो। तुम न होते तो शायद मैं भी गुस्सा करती।

इन्द्र : इसका मतलब तो यह हुआ कि मैं तुम्हारा नुकसान कर रहा हूँ।

मानसी : ऐसे क्यों कहते हो ? फिर कभी मत कहना। **(इन्द्र चुप रहता है)** मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? तुम नहीं जानते कि तुम मेरे लिए क्या हो ? तुम हो इसलिए मुझमें जैसे एक शक्ति रहती है, जिसके सहारे मैं जी पाती हूँ। वह शक्ति न होती तो मैं न जाने कब की डूब गयी होती। **(इन्द्र सुन रहा है)** पर मेरा ज़ोर गुस्सा करके नहीं मिलता। मैं गुस्सा नहीं करना चाहती। मुझे जीवन अच्छा लगता है, बहुत-कुछ मानती हूँ क्योंकि मानना ही होता है; फिर भी मुझे क्षोभ नहीं होता। तुम हो इस कारण जीवन को बड़े सहज भाव से (हठात् रुककर)··· मैं तुम्हें ठीक-ठीक समझा नहीं पाऊँगी।

इन्द्र : बोलती जाओ, रुक क्यों गयीं ?

मानसी : नहीं, मैं सब बातें ठीक से नहीं बता पाऊँगी। कोई दूसरी बात करो।

इन्द्र : दूसरी ही बातें तो हो रही थीं।

मानसी : यह किताब यदि मेरी समझ में न आयी तो समझा दोगे न ?

इन्द्र मानसी की ओर देखता रह जाता है।

क्या हुआ, जवाब नहीं दिया ?

इन्द्र : मुझे जिस दिन नौकरी मिलेगी, उसके दूसरे दिन तुमसे विवाह करूँगा।

मानसी : ना।

इन्द्र : तुम देखना।

मानसी : तुम भूल गये कि मैं तुम्हारी मौसेरी बहन हूँ ?

इन्द्र : भूल कैसे सकता हूँ ! जितनी बार विवाह की चर्चा की है, हर बार तुमने इस बात की याद दिलायी है सो कभी भूल सकता हूँ ?

मानसी : और हर बार तुमने कहा है—मैं इसे नहीं मानता।

इन्द्र : सच ही तो कहा है। क्यों मानूँ ? मैं कुछ नहीं मानूँगा।

मानसी : मुझे भी नहीं ?

इन्द्र : तुम्हें मानता हूँ पर तुम्हारे नियमों को नहीं।

मानसी : मुझे तुम बहुत दिनों बरदाश्त नहीं कर पाओगे।

इन्द्र : यह एक और बकवास तुम लगाये रहती हो।

मानसी : मैं बिल्कुल ठीक कहती हूँ। मैं एक बहुत साधारण लड़की हूँ।

इन्द्र : और मैं एकदम असाधारण।

मानसी : क्या मालूम ? पर सचमुच, तुम थोड़े असाधारण तो हो।

इन्द्र : सुनकर खुशी हुई।
मानसी : ई···बिल्कुल असाधारण नहीं हो।
इन्द्र : चलो, तब तो झमेला ही खत्म हुआ।
मानसी : क्या खत्म हुआ ?
इन्द्र : एक साधारण लड़का एक साधारण लड़की से ब्याह करेगा, इसमें तो कोई झमेला नहीं होगा।
मानसी : कुछ खत्म नहीं हुआ है। चलो, घर चलो।
इन्द्र : नहीं, मैं नहीं जाऊँगा।
मानसी : देर नहीं हो रही है ?
इन्द्र : हुआ करे।
मानसी : हाँ न ! तुम्हारे कारण मैं हर समय घर में डाँट सुना करूँगी न ?
इन्द्र : कैसा घर ? ···घर जहन्नुम में जाये।
मानसी : लो, फिर शुरू हुआ। चलो··उठो।
इन्द्र : (उठकर) चलो।
मानसी : ऊँ···बड़ा गुस्सा दिखा रहे हो··मानो मैं इससे डर जाऊँगी न !
इन्द्र : चलो, देर हो रही है। घर में डाँट पड़ेगी।
मानसी : नहीं जाऊँगी।
इन्द्र : ठीक है, तो फिर मैं बैठा।
मानसी : (उठते हुए) ऐ···नहीं···नहीं···। चलो।

इन्द्र मानसी के कन्धे पर हाथ रख देता है। मानसी हाथ हटा देती है।

क्या कर रहे हो ? देखते नहीं, यह पार्क है !
इन्द्र : पार्क है तो क्या हुआ ?
मानसी : (धीरे से) उधर देखो न, इस पेड़ के नीचे एक आदमी बैठा है।

उनके खड़े होने के बाद लेखक अँधेरे में एक ओर आकर बैठ गया था।

इन्द्र : तो उससे क्या हुआ ?
मानसी : वह देखेगा तो ?
इन्द्र : देखे न, खूब अच्छी तरह देखे।

फिर से मानसी के कन्धे पर हाथ रखता है। मानसी हाथ हटाकर आगे बढ़ जाती है। हँसते-हँसते इन्द्र भी उसके पीछे-पीछे चला जाता है। लेखक सामने की ओर आ जाता है।

लेखक : इन्द्रजित् और मानसी। घूमते-घूमते वे बहुत दूर निकल आये हैं।

बहुत दूर ? चले आये हैं ? या घूम रहे हैं···केवल घूम रहे हैं ? वे विवाह कर सकते हैं। फिर··वही चक्कर। एक-दो-तीन-चार-तीन-दो-एक। यह एक सवाल है। आवर्त्तन का सवाल। पूरे सवाल का उत्तर शून्य है इसीलिए कोई पूरी संख्या नहीं लेता। छोटी करके लेता है। उत्तर होता है जीवन। हर एक व्यक्ति का अलग-अलग तरह का जीवन।

ये पथरीले नयन विगत के
रहें चतुर्दिक् पड़े, घूरते
बंधा छन्द में
यह अनादि का खेल
रहे चलता अनन्त तक।
बंधा प्रकाश—अन्धकार के आवर्त्तन में
रक्तिम ध्वनि वह समय—काल की रहे गूंजती।
दिवा-रात्रि के खण्ड-खण्ड भी
एक सूत्र में हों अनुबन्धित।
खो जायें अनजान दिशा में
भूत-भविष्य खोजते अपना ठौर-ठिकाना
मैं क्यों सोचूं—वर्तमान तो मैं हूं।
क्या मिलना है—सूक्ष्म हिसाब लगा, संख्या गिन
उन प्रश्नों को हल करने की चेष्टा करके
हल जिनका है असम्भाव्य ?
क्या करना है सपनों के वायवी तन्तु से
आगत के आँचल को बुनकर ?
रात्रि-दिवस के मधुर छन्द का
ताल कभी भी नहीं कटेगा।
फिर क्यों करते व्यर्थ सोच
जंजाल जमा क्यों करते मन के देवालय में ?
बाँध सको तो बाँधो अपने हृत्-स्पन्दन को
समय ताल के साथ—
नहीं कुछ भी हो तब परवाह।

अमल-विमल-कमल का प्रवेश

लेखक : रुको, अभी नहीं, अभी भी समय नहीं हुआ है।

तीनों का प्रस्थान

बस एक मुहूर्त । इस मुहूर्त के आवर्त्तन को अस्वीकार करो—
अर्थात् पूरे सवाल को अस्वीकार करो । एक मुहूर्त—बस,
वर्तमान का एक मुहूर्त । यही तो जीवन है ।

फिर भी भोला मन कर पाता नहीं इसे स्वीकार
निरन्तर ढोता ही जाता है, बोझिल उन अंकों का भार
खोजता उत्तर उन प्रश्नों का, जिनको हल करना दुःसाध्य ।
मान लूँ कैसे मैं यह बात कि
उत्तर दीर्घकाल का शून्य ।
अल्प दिन की ही संख्या जोड़ रहा मैं बैठा सब दिन मूक
अभी तो लिखने को है शेष
प्रकृति के पात-पात पर शिशु अक्षर में
क्षण-क्षण की, जीवन की भाषा
अभी बहुत है शेष ।

कविता-पाठ के साथ-साथ लेखक पर प्रकाश कम होने लगता है। पीछे टेबुल और कुर्सियाँ, दरवाजे के बाहर बेंच । तीव्र प्रकाश । कविता-पाठ पूरा करके लेखक चला गया है । अमल-विमल-कमल और इन्द्रजित् आकर उसी बेंच पर बैठे हैं । कपड़े टिपटाप हैं, तनिक सतर्क और कठोर भंगिमा । घण्टी बजती है । अमल उठकर कमरे में जाता है । चेयर पर बैठे अदृश्य ज्ञानी-गुणियों को नमस्कार करता है । अनुमति पाकर सामने की कुर्सी पर बैठता है । मूक प्रश्नों का मूक उत्तर देता चलता है । बाहर बेंच पर वार्तालाप चल रहा है ।

विमल : कैबिनेट मिनिस्टरों के नाम याद हैं ?
कमल : ऊँहूँ, मैंने वह सब नहीं देखा है ।
विमल : ईयर बुक ले आते तो अच्छा होता ।
कमल : क्या अच्छा होता ? कितना रटते ?
विमल : कितना बजा इन्द्र ?
इन्द्र : बारह बीस ।
कमल : ग्यारह बजे से हम लोगों को बुलाकर बैठा दिया और बाबू लोग आये बारह बजे इण्टरव्यू लेने ।
विमल : यह सब दिखावा-भर है । आदमी तो पहले ही चुना जा चुका है ।
कमल : कौन हुआ होगा ? अमल के पहले जो गया था, वही ?

विमल : क्या पता ! अपने राम नहीं हैं, इतना-भर जानते हैं।
कमल : अमल को गये कितनी देर हुई ?
इन्द्र : पाँच मिनट हुए होंगे।
विमल : क्या-क्या पूछते हैं बाबा ?

भीतर अमल उठता है। सामने दरवाजे की ओर बढ़ता है, पर कुर्सी की डाँट खाकर दूसरी ओर बाहर निकल जाता है।

कमल : बहुत टेकनिकल प्रश्न पूछते होंगे ?
विमल : नहीं। खास नहीं। असल में सही उत्तर पर उतना ध्यान नहीं देते जितना उत्तर देने के ढंग पर।
कमल : हाँ, कोई बात न जानने पर स्माटली 'आई डोंट नो' कह देने से चल जाता है !
इन्द्र : 'आई डोंट नो' स्मार्टली कहना बहुत कठिन होता है।

घण्टी। विमल भीतर जाता है। ये दोनों बेंच पर पास-पास बैठते हैं। भीतर विमल का वैसा ही मूकाभिनय।

कमल : गला थोड़ा बैठ रहा है। तुम्हारे पास लौंग है ?
इन्द्र : ना। (**कमल सिगरेट निकालता है**) गला पकड़े है, सिगरेट पियोगे ?
कमल : ठीक नहीं होगा न ? (**सिगरेट रख लेता है**) तुम इसके पहले कितने इण्टरव्यू दे चुके हो ?
इन्द्र : पाँच।
कमल : तुम अच्छे हो ! मेरा तो यह चौथा ही है। किसी की खबर मिली ?
इन्द्र : हाँ, एक का रिग्रेट लेटर मिला है।
कमल : (तनिक रुककर) अगले महीने बाबूजी रिटायर कर रहे हैं।

इन्द्रजित् उत्तर नहीं देता। लेखक का प्रवेश। मुस्कराते हुए इन्द्रजित् की बगल में बेंच पर बैठ जाता है। जरा देर सब चुप रहते हैं।

कमल : कितना बजा ?
इन्द्र : साढ़े बारह।
कमल : आपको कितने बजे बुलाया था ?
लेखक : ग्यारह बजे। मेरा एक और इण्टरव्यू आज ही साढ़े दस बजे पड़ गया। मैंने तो इसकी आशा ही छोड़ दी थी, पर एक चान्स ले लिया और क्या !
कमल : आपको बुलाया तो नहीं न ?

लेखक : नहीं भाई, इसीलिए ज़रा हिम्मत हो रही है।
कमल : आप भाग्यवान हैं।

इसी बीच भीतर मूकाभिनय समाप्त करके विमल दूसरी ओर चला जाता है। घण्टी। कमल भीतर जाता है)

लेखक : सिगरेट ?
इन्द्र : मैं नहीं पीता, थैंक्स।
लेखक : (**सिगरेट जलाता है**) क्या पूछ रहे हैं, कुछ पता चला ?
इन्द्र : ना। उधर से बाहर निकलने को कह रहे हैं।
लेखक : ऐसा ही यूज़अली करते हैं। भाई लोगों के पास प्रश्न का स्टाक तो कम ही रहता है।
इन्द्र : आपका पहलेवाला इण्टरव्यू कैसा हुआ ?
लेखक : खूब अच्छा नहीं हुआ। वहाँ होगा नहीं। नौकरी अच्छी है।
इन्द्र : इसीलिए इस इण्टरव्यू को छोड़कर उसमें गये थे ?
लेखक : हाँ, पर जानते हैं, मुझे लगता है कि यह पॉलिसी गलत है। जब नौकरी पाना ही जरूरी है तब खराब नौकरी के लिए ही पहले इण्टरव्यू देना चाहिए क्योंकि उसमें चान्स ज्यादा रहता है।
इन्द्र : चलिए, इस बार तो दोनों ही हो गये।
लेखक : सो तो लक रहा। नहीं तो इसी अफ़सोस में तीन रात नींद न आती। मुझे नौकरी की कितनी ज़रूरत है, आप नहीं जानते।
इन्द्र : नौकरी की तो सभी को ज़रूरत है।
लेखक : सो तो एकदम ठीक है। माने जेनरली सबको ज़रूरत होती है। पर मुझे पटिकुलरली है।…तो आपको सब बातें खोलकर ही बता दूँ। उधार करके मैंने एक फ्लैट भाड़े पर ले लिया है। कम भाड़े का सुविधाजनक फ्लैट तो मेरे लिए हर समय खाली नहीं पड़ा रहेगा। इसमें और कुछ चाहे न हो, पानी की कल अलग है।
इन्द्र : आपकी बात पूरी समझ नहीं पाया ?
लेखक : माने…मैंने ब्याह कर लिया है और क्या ? बाबूजी राज़ी नहीं थे। इसी महीने नौकरी न मिली तो फ्लैट छोड़ देना पड़ेगा। मेरी हालत समझ रहे हैं ? उधार ले-लेकर कितने दिन मकान-भाड़ा दे सकता हूँ ?

कमल का साक्षात्कार हो चुकता है—वह बाहर निकल जाता है। इसके बाद अमल-विमल-कमल तीनों लौटकर इण्टरव्यू लेने के लिए तीन कुर्सियों पर बैठते हैं। लेखक की बात पूरी होने पर अमल घण्टी बजाता है, इन्द्रजित् भीतर जाता है। इस बार चारों मूक अभिनय में

भाग लेते हैं। लेखक कुछ देर बैठा सिगरेट पीता रहता है, फिर सिगरेट फेंककर सामने आ जाता है।

लेखक : अमल रिटायर करता है, उसका लड़का अमल नौकरी करता है। विमल बीमार हो जाता है, उसका लड़का विमल नौकरी करता है। कमल मर जाता है, उसका लड़का कमल नौकरी करता है। एवम् इन्द्रजित्—इन्द्रजित् का लड़का इन्द्रजित्। उधर फुटपाथ पर सात साल का एक लड़का हाथ में काठ का बक्स और गोद में साल-भर के लड़के को लिये खड़ा रहता है। उधर फुटपाथ पर एक लड़की खड़ी रहती है, नाम लीला। उधर आकाश सिन्दूरी हो उठा है, वहाँ बैठी मानसी जीवन को प्यार करना चाहती है। बहुत सारे जीवन को। जाने-अनजाने अज्ञात अपरिचित प्रकाश-अन्धकार। खण्ड-खण्ड टुकड़े अणु-परमाणु और सबको मिला दिया जाये तो चर्ख़ी (नागरदोला) का ऊपर-नीचे आना-जाना।

घूम रही है सृष्टि निरन्तर
आवर्त्तन में बँधी चल रही।
अस्त-व्यस्त आकाश
अचेतन-चेतन का सम्भार
ज्ञान-अज्ञान बीच प्रस्तार—
बाँधने को आतुर तत्काल
कर रहा हूँ मैं सतत प्रयास।

मुझे इन लोगों की कहानी कहनी ही होगी—इनकी जीवन-गाथा को मुझे नाटक में बाँधना ही होगा—

किन्तु भाषा तो है प्राचीन
कहानी क्षतविक्षत, बलहीन
रोशनी की रेखा है क्षीण
सभी कुछ धुँधलाया-सा,
है प्रकाश दिग्भ्रान्त।
समाधि की जड़ता का यह नागपाश
है घेरे चारों ओर
वहीं पर मुझे जलाकर आग चिता की
करना है आलोक।

इन्द्रजित साक्षात् करके जाता है। पुनः घण्टी।

घण्टी बज रही है। (**एक परमाणु और च्युत हो गया है। वह एक और परमाणु को आमन्त्रित कर रहा है— तीन परमाणु परस्पर पुकार रहे हैं। और भी**) ढेर-ढेर परमाणुओं से मिलकर बनी यह पृथ्वी घूम रही है और चक्कर काट रही है। और एक-पर-एक सेकण्ड, मिनट और आधे घण्टे चक्कर काट रहे हैं, काटे ही जा रहे हैं (**फिर घण्टी बजती है। अमल-विमल-कमल धीरज खो-सा रहे हैं।**) घण्टी बजी है। फिर बजेगी। फिर भी पृथ्वी है, फिर भी शताब्द है। हमारी पृथ्वी, हमारी शताब्दी। चर्खी जहन्नुम में जाये। सवाल भी जहन्नुम में जायें। हम हैं—अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित् एवं मैं। हम लोग हैं, अभी हैं, पृथ्वी पर हैं।

अमल विमल-कमल ऊबकर उठ खड़े होते हैं। जोर-जोर से घण्टी बजाते हैं, किन्तु उनके ऊपर अँधेरा-सा हो आया है। लेखक पर तीव्र प्रकाश पड़ रहा है।

मैं विभक्त, मैं अनुखण्डित हूँ
चूर-चूर कण-कण से निर्मित जटिल इकाई एक
जी रहा, और जीयूँगा।
बूढ़ी सदी आज भी बैठी
सुनने को कुछ गान
खोलकर कान चतुर्दिक्
ध्वंस-भ्रंश पृथ्वी है फिर भी
चली जा रही
अपराजिता अजेय निरन्तर।

अचानक प्रकाश बुझ जाता है। अँधेरे में यवनिका गिरती है। दबे किन्तु स्पष्ट सम्मिलित स्वर में कविता-पाठ चलता है।

बूढ़ी सदी आज भी बैठी
सुनने को कुछ गान
खोलकर कान चतुर्दिक्
ध्वंस-भ्रंश पृथ्वी है फिर भी
चली जा रही
अपराजिता अजेय निरन्तर।

द्वितीय अंक

एक ढंग से चार टेबल-कुर्सियाँ लगी हैं। एक खाली चौखट। उसके पीछे एक बड़ी कुर्सी और बड़ा टेबुल, टेलीफोन। लेखक टेबुल-कुर्सी झाड़ रहा है—झाड़ क्या रहा है, पंखों के झाड़न से जरा-जरा छूता जा रहा है, बस। उसके चेहरे या वस्त्र में कोई परिवर्तन नहीं है। झाड़ना पूरा करके सामने आता है।

लेखक : घर से स्कूल। स्कूल से कालिज। कालेज से दुनिया। दुनिया एक ऑफ़िस है। इसी ढंग का एक ऑफिस। यहाँ पर बहुत-से काम होते हैं, बड़े जरूरी-जरूरी भी। यहाँ बहुत-से लोग काम करते हैं। अमल-विमल-कमल-इन्द्रजित्।

अमल और विमल का प्रवेश

अमल : आठ-बावनवाली ट्रेन आज दस मिनट लेट आयी।
विमल : सियालदह में आज ट्राम रुक जाने के कारण ट्रैफिक जाम हो गया।

कमल एवं इन्द्र का प्रवेश। अमल-विमल बैठते हैं।

कमल : नौ-तेरह की गाड़ी आज भी नहीं पकड़ पाया।
इन्द्र : दो बस छोड़नी पड़ीं, पैर रखने तक की जगह नहीं थी।

कमल-इन्द्र बैठते हैं।

अमल : (विमल से) लड़का कैसा है ?
विमल : कुछ अच्छा है। (कमल से) लड़की भर्ती हुई ?
कमल : कहाँ हुई ? (इन्द्र से) कलम मिली ?
इन्द्र : ना। पाकेटमारी हो गयी।
अमल : हरीश।

विमल : हरीश।
इन्द्र : हरीश।
अमल : (जरा जोर से) हरीश।
लेखक : कहिए।
अमल : एक गिलास पानी दो।
विमल : (ज़ोर से) हरीश।
लेखक : कहिए।
विमल : पान ले आओ, और जर्दा भी।
कमल : (जोर से) हरीश।
लेखक : कहिए।
कमल : दो सिगरेट भी—कैंची।
इन्द्र : (ज़ोर से) हरीश।
लेखक : कहिए।
इन्द्र : यह चिट्ठी डाक में डाल देना।

लेखक अपनी जगह से हिलता नहीं। ये लोग भी उसे पैसा या चिट्ठी देते नहीं। यहाँ तक कि उसकी ओर देखा तक नहीं।

अमल : पाकेटमारों का तो ऐसा उपद्रव शुरू हुआ है कि बस, कुछ पूछो मत। उस दिन धर्मतल्ला की ट्राम में मौलाली का स्टापेज छोड़ते ही···
विमल : होमियोपैथी दवा करना चाहते हो तो कन्हाई भट्टाचार्य को दिखाओ। हमारे बहनोई को क्रानिक डिसेण्ट्री हुई थी···
कमल : तीसरी क्लास में भर्ती होगी और उसके लिए एडमिशन टेस्ट। वा ···वा। अंग्रेजी, बांग्ला और गणित और उसके ऊपर से कहा कि बर्थ सर्टिफ़िकेट दिखलाये बिना उम्र···

अचानक लेखक बड़े रोब से बड़े टेबुल के पास जाता है। अमल-विमल कमल और इन्द्र तनिक उठकर माथा खुजलाते हुए बैठ जाते हैं। लेखक के कुर्सी पर बैठते ही टेलीफोन की घण्टी बजती है।

लेखक : हैलो···हैलो···यस···यस···आर्डर···चालान···डेलिवरी फिफ्टीन पर्सेण्ट···यस···यस···बाई।

'इन' से एक के बाद एक कई फाइल लेकर 'आउट' में रखता है। फिर 'आउट' से 'इन' में। अमल जाकर एक फाइल पर सही करवाकर लौटता है, फिर विमल। फिर कमल। फिर इन्द्र। फिर फोन।

लेखक : हैलो···हैलो···यस···यस आर्डर···चालान···डेलिवरी···फिफ्टीन पर्सेण्ट···यस···यस···बाई।

फिर 'इन' से 'आउट' मेंफाइल डालता है।

अमल : हरीश।
विमल : हरीश।
कमल : हरीश।
इन्द्र : हरीश।

लेखक भीतर से आकर पुनः पंखवाला झाड़न लेकर अपने स्टूल पर बैठ जाता है। वे सब और जोर से पुकारते हैं।

अमल : हरीश।
विमल : हरीश।
कमल : हरीश।
इन्द्र : हरीश।

लेखक उठकर एक-एक करके सबके पास जाता है।

लेखक : कहिए। कहिए। कहिए। कहिए।
अमल : विमल बाबू।

लेखक अमल की फाइल विमल को देता है। विमल उसे रखकर लेखक को एक दूसरी फाइल देता है

विमल : कमल बाबू।

लेखक विमल की फाइल कमल को देता है।

कमल : निर्मल बाबू।
लेखक : निर्मल बाबू तो रिटायर कर गये, सर!
कमल : ओ।···इन्द्रजित् बाबू।

लेखक कमल की फाइल इन्द्रजित् को देता है।

इन्द्र : अमल बाबू।
अमल : विमल बाबू।
विमल : कमल बाबू।
कमल : इन्द्रजित् बाबू।

इस तरह तीन बार वही बात दुहरायी जाती है। हर बार पहली

बार से अधिक तीव्र गति से। अन्तिम बार लेखक फिरकी-सा नाचने लगता है। घण्टी बजती है। लेखक भीतर जाता है। बड़े साहब का आदेश लेकर बाहर आता है।

अमल : हरीश।
विमल : हरीश।
कमल : हरीश।
इन्द्र : हरीश।
लेखक : बड़े साहब के लिए चाय लाने जा रहा हूँ, सर।
अमल : ओ !
विमल : ओ।
कमल : ओ।
इन्द्र : ओ।

लेखक चाय लेने जाने की बजाय घूमकर सामने आ जाता है।

लेखक : फाइल के बाद चाय। फिर फाइल। फिर टिफिन। फिर फाइल। फिर चाय। फिर फाइल। फिर ट्राम बस-ट्रेन। इससे भी बड़े ऑफिस हैं---वहाँ फाइल, फिर टी—फिर फाइल। उसके बाद हिन्दुस्तान—फियाट—स्टैण्डर्ड।
अमल : हैलो घोष, ओल्ड बॉय, आज क्लब जा रहे हो ?
विमल : न, आज घर जाना होगा। मिसेज ने आज अपनी पुरानी फ्रेण्ड्स को पार्टी दे रखी है।
कमल : हैलो राय, ओल्ड बॉय, गाड़ी गराज से निकली ?
इन्द्र : कुछ पूछो मत। क्लच प्लेट जल गयी है। टैक्सी की भी इतनी बुरी हालत है, सुबह नौकर पूरे 45 मिनट लगाकर लौटा।

लेखक इस बीच भीतर बड़े साहब के टेबुल पर बैठता है। इनकी बात पूरी होते ही फोन।

लेखक : हैलो--हैलो--यस--बोर्ड ऑफ़ डायरेक्टर्स—कान्फ़रेंस बजट—एनुअल रिपोर्ट यस--यस—यस बाई। मिस मलहोट्रा।

मानसी शार्टहैण्ड की कापी लिये आती है।

मानसी : यस सर।
लेखक : (टहलते-टहलते) With reference to above letter in connection with the above matter, I would request

you—I shall be obliged if–forward us at your earliest convenince—let the office know immediately –15th ultimo –25th instant – thanking you, assuring you of our best co-operation– yours sincerely—
yours sincerely.

टेलीफोन

हैलो—यस-यस—बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स—कान्फ़्रेंस—बजट एनुअल रिपोर्ट—यस-यस—बाई– दैट्स ऑल मिस मलहोट्रा। (मानसो का प्रस्थान। लेखक निकलकर सामने आता है) दैट्स ऑल मिस मलहोट्रा। दैट्स ऑल लेडीज एण्ड जेंटिलमैन, दैट्स ऑल।

अमल : दैट्स ऑल।
विमल : दैट्स ऑल।
कमल : दैट्स ऑल।

सब कोरस में 'दैट्स ऑल' बोलते हैं। इन्द्र चुप रहता है। इन्द्र को चुप देखकर तीनों पहले रुक जाते हैं, फिर एक साथ जोरों से हँस पड़ते हैं।

अमल : वक अप, ओल्ड बॉय।
विमल : आल द बेस्ट, ओल्ड बॉय।

एक-एक करके इन्द्र की पीठ को थहथपाते हुए तीनों चले जाते हैं। इन्द्र बैठा रह जाता है। लेखक घूमकर पीछे जाता है और झाड़ू देने लगता है। इन्द्र अन्यमनस्क भाव से फाइल देखता है।

लेखक : कुछ खोज रहे हैं, सर ?
इन्द्र : आँ? हाँ, खोज रहा हूँ।
लेखक : क्या ?
इन्द्र : कुछ और।
लेखक : क्या ?
इन्द्र : आँ···नहीं, कुछ नहीं···कुछ नहीं। इसके सिवा और कुछ नहीं है ?
लेखक : मेरी समझ में ही नहीं आया, सर, कि आप क्या खोज रहे हैं ?
इन्द्र : हरीश, कुछ भी तो नहीं मिल रहा है। छोडो···हटाओ। कल सुबह यह फाइल अमल बाबू के टेबुल पर रख देना, यह विमल बाबू को देना और यह कमल बाबू को। और इस पर बड़े बाबू का दस्तख्त

होगा। मैं कल नहीं भी आ सकता हूँ।

लेखक : आपकी तबियत खराब है, सर ?

इन्द्र : तबियत ? हाँ, कल तबियत खराब हो जा सकती है। अच्छा, मैं चला।

इन्द्र का प्रस्थान

लेखक : अमल गया—विमल गया—कमल भी चला गया। केवल इन्द्रजित् बैठा सोच रहा है। इन्द्रजित् भी चला गया। मैं बैठा सोच रहा हूँ··· मैं···

मैं बैठा हूँ सोच रहा
बस सोच रहा हूँ।
मैं हूँ खण्डित एक उपकथा
एक शून्य, जो अभरणीय है।
जीवन मेरा ऐसे ही विलीन हो रहा।
(फिर भी अर्द्ध-चेतना लेकर
आती है क्यों मधुर मुखरता ?)

चूर्ण हुई पृथ्वी के कण-कण
मिले धूल में
जिन्हें समय का सूप निरन्तर
फटक रहा है
सार और निस्सार देखने।
पर क्या जीवन-बीज छिपा।
इन धूलि-कणों में ?
छोड़ो भी, क्या करना हमको
है भविष्य के बिखरे कण को
जोड़-बटोर सृजन करने की
इच्छा मन में पनपाने से।
(मिट्टी अब यह बहुत पुरानी
सूना नभ — है व्यर्थ कल्पना
नये सृजन का स्वप्न देखना
सभी निरर्थक।)

मैं बैठा हूँ सोच रहा।
अब भी वैसे ही सोच रहा हूँ—
मनुज एक खण्डित अपूर्णता।
फिर भी मन क्यों बार-बार
है खोज रहा, है सोच रहा
उस पूर्ण मनुज की बात
आज भी ?

मौसी का प्रवेश

मौसी : तू यहाँ बैठा है ? और खोजते-खोजते मेरे प्राण निकल गये। यहाँ बैठा क्या कर रहा है ?

लेखक : सोच रहा हूँ।

मौसी : इतना क्या सोचता रहता है, मैं भी तो सुनूँ ?

लेखक : सोचता हूँ, हम लोग कौन हैं ?

मौसी : इसमें सोचने की क्या बात है ? तुम लोग तुम लोग हो और क्या ?

लेखक : ठीक ही तो है, हम लोग हैं, यह तो मेरी अकल में ही नहीं आया था। पर हम लोग क्या हैं ?

मौसी : लो, इसकी बात सुनो। हम लोग क्या हैं ? तुम लोग सब हीरे की कनी जैसे लड़के हो। अच्छी तरह तुम लोगों ने इम्तहान पास किया है, अच्छी-अच्छी नौकरी पर लगे हो।

लेखक : ठीक कह रही हो, मौसी। हीरे की कनी। कनी, माने टुकड़ा हूँ, यहाँ तक तो मैं भी पहुँच पाया था, पर हीरे की कनी हूँ यह खोपड़ी में नहीं घुसता था।

मौसी : किस खामखयाली में डूबे रहते हो ?

लेखक : सच, खामखयाली ही तो है। तुमने फटाफट मेरे दो प्रश्नों का जवाब दे दिया—अब एक प्रश्न का और दो तो। पर यह उतना आसान नहीं है।

मौसी : क्या ?

लेखक : हम लोग क्यों हैं ?

मौसी : क्यों हैं, माने ?

लेखक : माने यही कि हम लोग हैं क्यों ?

मौसी : बलैया लूँ···वाह रे···होंगे क्यों नहीं ? तुम लोगों के होने से किसका कलेजा जल रहा है जरा मैं भी तो सुनूँ !

लेखक : उहुँ···हुआ नहीं। यह जवाब लॉजिकल नहीं हुआ।

मौसी : कौन तेरी लॉजिक का उधार खाये बैठा है ? जितनी सब अलक्षणी बातें। ब्याह न करने से ही ऐसी फालतू बातें दिमाग में आती हैं।

लेखक : इसके बीच में ब्याह की बात कहाँ से टपक पड़ी ?

मौसी : नहीं, ब्याह की बात क्यों आयेगी ? आयेगी तो यह सब क्यों, कौन, क्या की ! तू ब्याह क्यों नहीं करता, इसका जवाब मुझे दे ?

लेखक : बड़ा कठिन प्रश्न है मौसी। ब्याह क्यों करूँ, यही सोचते-सोचते तो प्राण निकले जा रहे हैं।

मौसी : लो भला, इसकी बातें सुनो ! ब्याह क्यों करूँ। सभी करते हैं, फिर तू ही क्यों नहीं करता ?

लेखक : बस--- मिल गया उत्तर। सभी करते हैं।

छींको क्यों तुम ? खाँसो क्यों तुम ?
मधुर-मधुर मुस्काओ क्यों तुम ?
लेते देख जम्हाई उसको
चुटकी तुरत बजाओ क्यों तुम ?
सब करते हैं इसीलिए तुम भी करते हो ?

मौसी : लो, यहाँ तो कविता शुरू हो गयी। मैं चली।

लेखक रास्ता रोक लेता है।

कविता का सुन नाम दौड़कर भागीं तुम क्यों ?
ऊँचे स्वर मे छेड़ रेडियो रखतीं तुम क्यों ?
और दाल में मुट्ठी-भर मिर्चा देती क्यों
सब करते हैं, इसीलिए तुम भी करती हो ?

मौसी : लो, दाल में मुट्ठी-भर मिर्चा मैंने कब डाला ?

लेखक : समय हुआ यह देख दौड़ते आफ़िस क्यों तुम ?
छुरी से काटतीं सदा तरकारी क्यों तुम ?
क्यों देती हो तेल दूसरे के चरखे में ?
सब करते हैं इसीलिए तुम भी करती हो ?

मौसी : क्या पागलपन करते हो, मेरी तो समझ में नहीं आता। ब्याह हो जाता तो यह सारा पागलपन दो दिनों में रफू-चक्कर हो जाता। (प्रस्थान)

लेखक : विवाह। जन्म, विवाह और मृत्यु। जन्म के बाद विवाह, फिर मृत्यु। बहुत दिनों पहले मैंने एक बड़ी सुन्दर कहानी पढ़ी थी---पता नहीं आप लोगों ने पढ़ी है या नहीं। कहानी का अधिकांश तो भूल गया हूँ फिर भी···। एक राजकुमार था और एक राजकुमारी। बहुत-

से झंझट-झमेलों के बाद—उसके बाद ही तो असल कहानी शुरू होती है—दोनों सुख से राजपाट भोगने लगे। राजपाट या घर-गृहस्थी क्या भोगने लगे, ठीक से याद नहीं। पर हाँ, दोनों बड़े सुख से रहने लगे, यानी इतने अधिक सुख से कि उसे लेकर कहानी और आगे बढ़ ही नहीं सकी। (नेपथ्य से शंखध्वनि। मंच के बीच में मानसी सिर पर साड़ी का पल्ला रखे सलज्जा नववधू-सी आकर खड़ी होती है।) विवाह। एक पुरुष और एक नारी। दम्पती—जम्पती—जायापति। सीधे-सादे ढंग से कहने का मतलब दूल्हा-दुल्हन।

अमल का प्रवेश—नये विवाह का-सा संकोच

अमल : जरा सुपारी देना तो।
मानसी : आले पर रखी है। ले लो न।
अमल : न जाने कहाँ रखी है, मुझे नहीं मिलेगी।
मानसी : अहा, नहीं मिलेगी! इतने दिनों तक कौन खोजकर दिया करता था, जरा सुनूँ ?
अमल : इतने दिनों कोई मेरा था क्या ?
मानसी : चुप रहो, कोई सुन लेगा।
अमल : सुन लेगा—तो फिर चुपचाप कानों में बोलूँ···
मानसी : क्या करते हो ? जाओ, तुम इस कमरे में जाओ। न जाने कब कौन आ पड़े।

अमल का प्रस्थान

लेखक : दम्पती—जम्पती—जायापति—माने इसके बाद पति-पत्नी।

मानसी का घूँघट खिसक चुका है—स्वाभाविक गृहिणी हो गयी है। विमल का प्रवेश। हाथ में अखबार है—कुर्सी पर बैठकर पढ़ना शुरू करता है। मानसी पास आती है।

मानसी : कोई खास खबर है ?
विमल : एँ ?···नहीं। वही सब···
मानसी : मैंने सोचा शायद दुनिया में कुछ बहुत बड़ी बात हो गयी है।
विमल : क्यों क्या हुआ ?
मानसी : कब से अखबार लिये बैठे हो, सिर तक नहीं उठाया है तुमने।
विमल : नहीं—ऐसे ही जरा देख रहा था, (अखबार रखकर) हाँ बोलो, क्या कह रही थीं ?
मानसी : खास कुछ नहीं। आज शाम को क्या कर रहे हो ?

विमल : क्यों ?

मानसी : ऐसे ही ! ज़रा बाहर निकलने का मन था।

विमल : पर···आज तो मेरे आफ़िस में एक आदमी रिटायर कर रहे हैं सो फेयरवेल मीटिंग है। कहाँ चलना चाह रही थीं ?

मानसी : नहीं, कहीं नहीं।···दाढ़ी नहीं बनाओगे ? नौ बजा।

विमल : नौ ? माई गाड।

विमल का प्रस्थान

लेखक : दम्पती—जम्पती—जायापति माने मियाँ-बीवी।

कमल का प्रवेश

मानसी : अच्छा, तुम्हारा दिमाग ठीक है या नहीं ? मुन्ना को बुखार था, देखकर गये थे, फिर भी रात दस बजे लौटने की फुर्सत मिली।

कमल : बार्ली ले आया हूँ। यह लो।

मानसी : हाँ, ले तो आ रहे हो बार्ली, पर रात दस बजे। पहले की ले आयी खत्म नहीं हो गयी ? कुछ खयाल था कि मुन्ना क्या लेगा ?

कमल : एकदम खत्म हो गयी थी।

मानसी : जो जरा-बहुत बची थी वही जोड़-बटोरकर बना दी थी।

कमल : अब कैसा है ?

मानसी : निन्यानवे है। मुसम्मी नहीं लाये ?

कमल : यहाँ का फलवाला चोर है, रुपये में चार देता है। कल बाजार से ला दूँगा।

मानसी : चलो, हाथ-मुँह धोओ। मैं खाना परोसती हूँ।

दोनों का अलग-अलग दिशाओं में प्रस्थान

लेखक : दम्पती—जम्पती—जायापति—दूल्हा-दुल्हन, पति-पत्नी, मियाँ-बीवी—अमल-विमल-कमल एवं इन्द्रजित्।

इन्द्रजित् का प्रवेश

लेखक : अरे, इन्द्रजित् ?

इन्द्र : अरे तुम ! कितनी ताज्जुब की बात है। तुमसे यहाँ ऐसे मुलाकात हो जायेगी, सो तो सोचा ही नही था।

दोनों जोर से कर-मर्दन करते हैं।

लेखक : ओ, कितने सालों बाद तुमसे भेंट हुई है।
इन्द्र : हाँ, सात साल हुए होंगे।
लेखक : इतने दिनों तुम कहाँ थे ? भोपाल में ही ?
इन्द्र : नहीं। (भोपाल की नौकरी तो साल-भर बाद ही छूट गयी) उसके बाद बहुत जगह घूमता रहा। बम्बई, जालन्धर, मेरठ, उदयपुर—बदलीवाली नौकरी मिल गयी है, यहाँ से वहाँ चक्कर काट रहा हूँ।
लेखक : यही तो तुम चाहते थे।
इन्द्र : यही चाहता था ?— पता नहीं।
लेखक : वाह। वह पेंगुइन, कंगारू, एस्किमो—सब भूल गये ?
इन्द्र : ओ ! सरल भूगोल परिचय ? तुम्हें अभी तक याद है ?
लेखक : क्यों, तुम्हें भूल गया ?
इन्द्र : नहीं, भूला तो नहीं हूँ, पर लगता है अब दृष्टि बदल गयी है। उस दिन पाकिट में एक रुपया बारह आने की पूँजी लेकर हावड़ा छोड़ देता तो कैसा लगता, पता नहीं। आज लगता है, भूगोल से बाहर पृथ्वी नहीं है, कम-से-कम इस देश में तो नहीं ही।
लेखक : विदेश में ?
इन्द्र : विदेश तो गया नहीं, वहाँ की बात कैसे कहूँ ? मलाया की एक नौकरी के लिए इण्टरव्यू दिया था पर मिली नहीं।
लेखक : मिलने से जाते ?
इन्द्र : हाँ, क्यों नहीं ?
लेखक : लगता है अभी शादी नहीं की है ?
इन्द्र : समय ही कहाँ मिला ? और तुमने ?
लेखक : बस, एक-सी ही गति है।
इन्द्र : और सबका क्या हालचाल है ?
लेखक : सब माने ?
इन्द्र : अमल-विमल-कमल।
लेखक : सब ठीक ही हैं, नौकरी कर रहे हैं, गृहस्थी चला रहे हैं।
इन्द्र : तुम्हारी बातों से तो नहीं लगता कि सब ठीक हैं ?
लेखक : नहीं···ठीक ही हैं। पर मुझे उनसे कोई ईर्ष्या नहीं है। तुम्हें होती है ?
इन्द्र : क्या जानूँ ? पता नहीं।
लेखक : मानसी का क्या हालचाल है ?
इन्द्र : मानसी···? अरे हाँ, तुम तो उसे मानसी ही कहते हो न ? ठीक है।
लेखक : कहाँ है ?

इन्द्र : (हँसकर) माने, जानना चाहते हो न कि शादी की है या नहीं ? नहीं, नहीं की। हजारीबाग में एक स्कूल में नौकरी करती है।

लेखक : (ज़रा देर रुककर) बस, और कोई समाचार नहीं है ?

इन्द्र : और क्या समाचार जानना चाहते हो ?

लेखक : तुम जो भी बतलाना चाहो।

इन्द्र : (हँसकर) सचमुच और कोई समाचार नहीं है। बतलाने लायक दुनिया में कुछ घटना ही कहाँ है ! मैं नौकरी करता हूँ—वह नौकरी करती है। मैं चिट्ठी लिखता हूँ—वह जवाब देती है। साल में एक बार मुलाकात होती है। हम दोनों प्लान करके छुट्टी लेकर कलकत्ता में भेंट करते हैं। बस, इतना ही तो समाचार है।

लेखक : तुम लोग विवाह करोगे ?

इन्द्र : नहीं ही करूंगा, ऐसा तो तय नहीं किया है, पर हाँ, अभी तक किया नहीं है, यह सच है।

लेखक : विवाह कर क्यों नहीं डालते ?

इन्द्र : पता नहीं। मैं इसका कोई कारण नहीं बतला सकता। सम्भव था पास होने के बाद बिना कुछ सोचे-विचारे एक दिन कर लेता तो कर लेता। तब तो सोचना-विचारना नहीं था। वहाँ उसी मैदान में बैठकर न जाने कितनी बातें की हैं, प्लान किया है। और ऐसे ही एक दिन तर्क करते-करते न जाने क्या कैसे हो गया कि…

मानसी का प्रवेश। आकर पास बैठ जाती है—इन्द्र भी उसके पास बैठता है। लेखक एक कोने में अँधेरे में चला जाता है।

मानसी : इन्द्र, मुझसे नहीं होगा।

इन्द्र : क्या नहीं होगा ?

मानसी : तुम क्यों इस तरह ज़िद कर रहे हो ? मुझे कुछ समय दो।

इन्द्र : समय-समय-समय। आज छः महीने से बस तुम एक ही बात कह रही हो—समय दो।

मानसी : मैं क्या करूँ, तुम्हीं बतलाओ। तुम्हारे जितना साहस मुझमें नहीं है।

इन्द्र : साहस मत कहो। कहो कि इच्छा नहीं है।

मानसी : इच्छा होने से क्या सब-कुछ किया जा सकता है ?

इन्द्र : सब-कुछ की बात मैं नहीं जानता, पर हाँ, विवाह किया जा सकता है, इतना जानता हूँ।

मानसी : मर्द लोग जो कुछ…

इन्द्र : बस-बस, मुझे पता है। यही न कि मर्द जो कुछ कर सकते हैं औरतें नहीं कर पातीं। औरतें खाली सोच सकती हैं, मान सकती हैं और समय चाह सकती है।

मानसी : क्यों बेकार गुस्सा होते हो ?

इन्द्र : (रुककर) नहीं, गुस्सा नहीं हो रहा हूँ !···कल मैं भोपाल चला जा रहा हूँ, इसीलिए आज इसके बारे में जानना चाहता था।

मानसी : भोपाल चले जाने से ही सब-कुछ शेष हो जायेगा ?

इन्द्र : (रुककर) पता नहीं।

मानसी : इन्द्र।

इन्द्र : मुझे कुछ पता नहीं मानसी, सच कहता हूँ।

मानसी : (धीरे) तब फिर पहले पता कर लो। पहले भोपाल जाकर देखो कि क्या होता है !

इन्द्र : अब कौन गुस्सा हो रहा है ?

मानसी : यह गुस्सा नहीं है इन्द्र। मैं बहुत सोच-समझकर कह रही हूँ—जिन्दगी बच्चों का खिलवाड़ नहीं।

इन्द्र देखता रह जाता है। अन्धकार। मानसी चली जात है। पुनः लेखक पर प्रकाश पड़ता है। इन्द्र उठकर पास आता है।

इन्द्र : हम दोनों जीवन को लेकर बच्चों का खिलवाड़ नहीं कर सके। बहुत सोच-विचार किया। बहुत हिसाब-किताब किया। अभी भी करता रहता हूँ। लगता है सचमुच कहीं जीवन बच्चों का खिलवाड़ ही न हो उठे ! जीवन—महामूल्यवान जीवन। अखबार पढ़ते हो ?

लेखक : हाँ, बीच-बीच में।

इन्द्र : न जाने कब एक खबर पढ़ी थी। अमरीका के सारे अणु-अस्त्र और कुछ नहीं, स्विच का खिलवाड़-भर हैं। कहीं भूल से आणविक युद्ध न शुरू हो जाये इसीलिए स्विच में बहुत तरह के आटोमैटिक इण्टरलिंकिंग सिस्टम रखे गये हैं—वैसे ही जैसे रेल के सिगनल में होते हैं। मान लो, कभी भूल से कुछेक एटम और हाइड्रोजन बम गिरने से सारी पृथ्वी नष्ट हो जाये तो ? सोच सकते हो ?

लेखक : तुम कहना क्या चाहते हो ?

इन्द्र : खास कुछ नहीं। इसी मूल्यवान जीवन की बातें जिसे लेकर इतनी विवेचना, इतना हिसाब-किताब होता रहता है।

लेखक : मतलब यह कि तुम तो विवाह करना चाहते हो, पर मानसी ही मन नहीं तय कर पा रही है ?

इन्द्र : नहीं, ऐसी बात नहीं है, कम-से-कम फिलहाल तो नहीं। हर समय क्या कोई एटमबम की बात सोच सकता है? रात में तारों-भरे आकाश की ओर यदि निहारो और किताबों में पढ़े ज्योतिषशास्त्र की बात यदि सोचो तो सारे सौर-जगत् में इस छोटी-सी पृथ्वी का कुछ महत्त्व लगता है? कीड़े-मकोड़ों जैसे इन मनुष्यों का कोई मूल्य है? फिर भी यही बात यदि हर समय सोची जाये तो क्या ज़िन्दा रहा जा सकता है?

लेखक : फिर भी तो तुम सोचते रहते हो?

इन्द्र : क्या करूँ, सोचे बिना रहा नहीं जाता। फिर अपने जीवन को बहुत विराट बनाकर भी मैं सोचता हूँ। मैं भूल जाता हूँ कि महाकाल के निकट मेरा जीवन क्या है···एक पल मात्र ही तो। मैं यह भी भूल जाता हूँ कि इस अखिल विश्वब्रह्माण्ड में मेरा अस्तित्व धूल के कण से अधिक महत्त्वहीन है। वरन् मैं सोचता हूँ कि इस दुनिया में मेरे जीवन की तरह मूल्यवान और कुछ है ही नहीं।

लेखक : इस तरह भूलना भी प्रकृति का वरदान समझो···मनुष्य इसी हथियार के भरोसे बच पाता है।

इन्द्र : यह हथियार पूरा नहीं पड़ता। ज्ञानवृक्ष का फल। यह तारों-भरा आकाश सब गोलमाल कर देता है, सब गोलमाल कर देता है।
तुम, मैं, मानसी, कमल, विमल, अमल···

वाद्यसंगीत में इन्द्र का स्वर डब जाता है। सारे मंच पर अन्धकार हो जाता है। प्रकाश का एक पुंज लेखक एवं इन्द्र के ऊपर पड़ता है और दूसरी क्षीण रेखा पीछे खड़ी मानसी के ऊपर। दूसरी ओर हल्के-से प्रकाश में अमल, विमल और कमल की छाया-मूर्तियाँ। वाद्यसंगीत एक गम्भीर कविता-पाठ के स्वर में परिणत होता है।

कण्ठस्वर : धरती मिलती है सागर में
औ' सागर जा दूर क्षितिज में लीन हो रहा
उस विस्तीर्ण सौर-मण्डल में
इस पृथ्वी का तुच्छ ठिकाना···
कहाँ खो गया?
पृथ्वी का अस्तित्व— दो क्षणों का यह जीवन
क्या है? —एक विलास मात्र
इस सतत उच्छरित जीवनधारा
और काल की अनन्त गति का।
(जीवन का इतिहास, क्षणिक

आकस्मिक संयोजन-भर तो है।
धरती की यह अर्थहीन नव-स्पन्दन
केवल दान कुछेक क्षणों का ही तो।
उस अनन्त गणना में मैं हूँ
मात्र धूल के कण-सा
संज्ञाहीन, तुच्छ, साधारण।
ठीक युधिष्ठिर ने समझा था
बक-रूपी उन धर्मराज के प्रश्नों को···
जीवन का मर्म वही था।)
जीवन की इस सतत प्रवाहित
उच्छल धारा की गति को
है मृत्यु कर रही रेताला
यह कहना कितनी बड़ी भूल है?
एक मृत्यु क्या कर सकती है
प्रखर प्राणधारा को बाधित?
(फिर भी मानव मूढ़
सोचता इसी तरह है।
मानव के इतिहास-ग्रन्थ में
नहीं लिखी है गयी
और कोई घटना विस्मयकर इससे)

स्तब्धता। एकदम अँधेरा हो जाता है—केवल मानसी पर पड़नेवाला प्रकाश थोड़ा और तीव्र हो जाता है।

मानसी : फिर भी मैं हूँ कीट अधम-बेशर्म।
तुष्ट चतुर्दिक् फैले जीवन तन्तु-जाल।
विस्मृत कर बैठा मैं गहरी जटिल समस्या
गूढ़ तत्त्व आलोचन सब-कुछ।
किन्तु अनन्त घोषणा करता
उद्धत प्राणशक्ति से भरकर
तुच्छ धूल-कण के मुहूर्त की।

मानसी पर पड़नेवाला प्रकाश बुझ जाता है। फिर धीरे-धीरे प्रकाश होता है तो मंच पर बीच में पाद-प्रदीप के पास लेखक अकेला दिखलायी पड़ता है।

लेखक : प्राणों का उद्धत अधिकार। पर किसके प्राण ? इन्द्रजित्, मानसी, मैं, और कौन ? अमल-विमल-कमल।

अमल का प्रवेश

अमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
लेखक : ठीक।
अमल : अभी भी लिखते-विखते हो या छोड़ दिया ?
लेखक : बीच-बीच में लिख लेता हूँ।
अमल : तुम्हारा वह नाटक पूरा हुआ ?
लेखक : ना। तुम्हारा क्या हालचाल है ?
अमल : अच्छा नहीं है भाई।
लेखक : क्यों, क्या हुआ ?
अमल : अरे, इस ए. बी. सी. कम्पनी में नौकरी करके तो जिन्दगी ही बरबाद हो गयी। (सीनियर असिस्टेण्ट की पोस्ट पर काम करते छः साल हो गये)---छः साल का अनुभव मुझे और असिस्टेण्ट मैनेजर की पोस्ट पर ले आये बाहर से किसी एक मद्रासी को।
लेखक : अच्छा ?
अमल : बस, पूछो मत। (आजकल मद्रासियों का ही बोलबाला है। बंगाली बंगालियों के हाथों मरेंगे। मैंने ही भूल की, उस समय पी. आर. क्यू. कम्पनी का ऑफर नहीं लिया। सोचा, यहाँ भी तो प्रमोशन हुआ जा रहा है, क्यों फालतू में इधर-उधर) सच कवि, जीवन से विरक्ति हो गयी।
लेखक : घर में सब लोग मजे में हैं ?
अमल : मजे में क्या हैं ! ऐसी हालत में कहाँ तक चैन से रहा जा सकता है ! (छः साल हो गये— सीनियर असिस्टेण्ट के सीनियर असिस्टेण्ट) अच्छा भाई चलूँ, ज़रा जल्दी है।

अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश

विमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
लेखक : ठीक।
विमल : अभी भी लिखते-बिखते हो या छोड़ दिया ?
लेखक : बीच-बीच में लिखता हूँ।
विमल : तुम्हारा नाटक पूरा हुआ ?
लेखक : ना। तुम्हारा क्या हालचाल है ?

विमल : ठीक ही है। हम लोगों के फर्म को हैवी इंजीनियरिंग में अच्छा काण्ट्रैक्ट मिला है। राँची ट्रान्सफर हो गया है, कल जा रहा हूँ।

लेखक : फैमिली को ले जा रहे हो ?

विमल : हाँ, क्वार्टर दिया है। और फैमिली माने तो खाली मिसेस। लड़के को लॉ मार्टीनियर में भर्ती करा दिया है। राँची में कौन जाने कैसा स्कूल मिले !

लेखक : तो मतलब अच्छे ही हो ?

विमल : हाँ, चलता है और क्या ? अच्छा भाई, चलूँ। ज़रा न्यू मार्केट जाना है—कुछ लास्ट मिनट शापिंग करनी है। तुम उधर जाओगे क्या ? तो चलो, लिफ्ट दे सकता हूँ।

लेखक : नहीं भाई, मुझे अभी नहीं जाना है।

विमल : अच्छा भाई, सो लाँग।

विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश

कमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?

लेखक : ठीक।

कमल : अभी भी लिखते-विखते हो ?

लेखक : ना।

कमल : हाँ भाई, इतने झमेलों में ऐसी हॉबी बनाये रखना बड़ा मुश्किल होता है। मैं भी तो माउथ आर्गन बजाया करता था, पर कहाँ चालू रख सका ? (खराब होकर पड़ा है. ठीक भी नहीं कर पाया। कैसी महँगाई है) हाँ, तुमने इंश्योरेंस करवाया है ?

लेखक : ना।

कमल : कहते क्या हो ? नहीं भाई, यह तो ठीक बात नहीं है। एक सिक्योरिटी तो चाहिए। जिन्दगी के बारे में कौन क्या कह सकता है ? इंश्योरेंस करवा डालो—कम-से-कम दस हज़ार का।

लेखक : किसके लिए इंश्योरेंस करवाऊँ ?

कमल : क्यों, ब्याह नहीं किया तुमने ?

लेखक : ना।

कमल : खैर, पर करने में क्या देर लगती है ? और फिर करते साथ बाल-बच्चे। ज्यादा उम्र में बीमा करवाने से प्रीमियम रेट बहुत बढ़ जाता है। (फिर अपनी बुढ़ौती में भी तो कुछ सहारा चाहिए !) कितने का करवाओगे, बता दो, मैं सब इन्तजाम करवा दूंगा।

लेखक : तुमने क्या नौकरी छोड़ दी ?

कमल : दिमाग़ खराब हुआ है ? आजकल के ज़माने में कोई नौकरी छोड़ता है ? पर हाँ एक बिज़नेस की चेष्टा में हूँ। (**यदि सब हिसाब-किताब ठीक बैठ गया तो नौकरी-चौकरी, बीमा की दलाली-फलाली सब छोड़ दूंगा।**) अच्छा, ऐसा कोई फायनेंसियर तुम्हारी निगाह में है जो करीब 25 हज़ार रुपये लगा सके ? बड़ी अच्छी स्कीम है ? फॉर्टी परसेण्ट प्राफ़िट गारण्टीड। मैं सारा हिसाब फैलाकर बता दे सकता हूँ।

लेखक : ऐसा कोई मेरी जानकारी में तो नहीं।

कमल : चिन्ता मत करो, कोई-न-कोई मिलेगा ही। ऐसी सोना उगलनेवाली स्कीम है कि रुपया लगानेवालों की कमी न होगी। अच्छा भाई, चलूं। हाँ, तुम इंश्योरेंस की बात सीरियसली सोच देखो।

कमल का प्रस्थान।

लेखक : (कविता) किन्तु अनन्त घोषणा करता
उद्धत प्राणशक्ति से भरकर
तुच्छ धूलि-कण के मूहूर्त की।

ये सब छोटे-छोटे कण हैं—इनकी दैनन्दिन जीवन की अनेक छोटी-मोटी घोषणाओं का इतिहास मेरा नाटक है। अमल-विमल-कमल। एवं इन्द्रजित्।

इन्द्र का प्रवेश।

तुम्हारी कौन-सी अनन्त घोषणा है, इन्द्रजित् ?

इन्द्र : घोषणा, माने ?

लेखक : कुछ नहीं। हाँ, मानसी से भेंट हुई ?

इन्द्र : नही, हुई नहीं है पर होगी। उसी मैदान में।

इन्द्र पीछे चला जाता है।

लेखक : उस मैदान में। उसी घने पेड़ के नीचे।
बीते दिन की अनगिन बातें
तृण-तरु-तरु में गुंथी हुई हैं।
जीवन के आगमन
प्रथम यौवन का
गुपचुप मन की बातें
उस कोने में रमी हुई हैं।

इन्द्रजित् और मानसी। वे फिर से वहाँ बैठेंगे, बात करेंगे।

दिन पर दिन बीते जाते हैं
मास-वर्ष की रगड़ें खा-खा
बात पुरानी पड़ जाती है
वही बात फिर-फिर आती है।
फिर भी आओ, उस कोने में
हरी-हरी दूर्वा पर बैठें
इधर-उधर की बातें करते
हम-तुम दोनों कुछ क्षण काटें

मानसी आकर इन्द्रजित् की बगल में बैठ जाती है। बातचीत शुरू होती है। लेखक हट जाता है।

इन्द्र : लगता है अब बहुत दिनों तक तुमसे मुलाकात न होगी।
मानसी : क्यों ?
इन्द्र : शायद बाहर चला जाऊँ।
मानसी : बाहर माने ? बाहर ही तो हो।
इन्द्र : और दूर।
मानसी : कहाँ ?
इन्द्र : लन्दन।
मानसी : लन्दन ? कोई नौकरी मिली है ?
इन्द्र : नहीं, नौकरी तो नहीं मिली है, पर अपने-आपको इस प्रवाह में छोड़ देने लायक रुपया जुट गया है। एक इंजीनियरिंग कोर्स में एडमिशन ले लिया है। पासपोर्ट वग़ैरह भी तैयार हो गया है। वहाँ पहुँचकर कोई नौकरी खोज लूँगा।
मानसी : न मिली तो ?
इन्द्र : मिल जायेगी।
मानसी : नहीं ही मिली तो ?
इन्द्र : कुछ-न-कुछ तो मिलेगा ही। अकेले पेट की कितनी चिन्ता !
मानसी : इस तरह तुम कब तक बहते रहोगे ?
इन्द्र : जब तक सम्भव होगा।
मानसी : तुम्हें यह सब अच्छा लगता है ?
इन्द्र : उहुँ।
मानसी : तब ?

इन्द्र : ढब क्या ?

मानसी : कहीं एक जगह टिककर रहते क्यों नहीं ?

इन्द्र : टिककर रहने से ही अच्छा लगने लगेगा ?

मानसी : पता नहीं।

इन्द्र : मुझे भी नहीं पता। मानसी—सच पूछो तो अच्छा शब्द का कोई अर्थ ही नहीं होता। अच्छा लगने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मानसी : (तनिक रुककर) इन्द्र।

इन्द्र : बोलो।

मानसी : मुझसे शादी हो जाती तो तुम स्थिर होकर बैठ पाते ?

इन्द्र : पता नहीं। आज तो कुछ भी नहीं कह सकता। एक ज़माना था जब इस सम्बन्ध में कुछ कहने की स्थिति में था…

मानसी : तुम्हें मेरे ऊपर गुस्सा नहीं आता ?

इन्द्र : ना। पहले आता था पर अब नहीं। और फिर ब्याह करने से क्या होता, यह कौन जानता है! सम्भव था हमारी यह मित्रता समाप्त ही हो जाती।

मानसी : और यह भी तो हो सकता था कि इससे भी घनिष्ठ एक दूसरी मैत्री का सम्बन्ध बन जाता ?

इन्द्र : पता नहीं मानसी, कुछ पता नहीं · मैंने इस सम्बन्ध में बहुत सोचा है, मन-ही-मन न जाने कितनी उधेड़बुन की है, पर सारी बातों का उत्तर कहाँ दे पाया हूँ! अब तो न जाने कैसी क्लान्ति घेरे ले रही है। बहुत-सा तर्क-वितर्क भी अच्छा नहीं लगता। कुछ करने का मन भी नहीं करता। केवल क्लान्ति और क्लान्ति। बस, मन करता है सो रहूँ।

ज़रा देर मौन रहता है

मानसी : चलो, थोड़ा घूमें।

इन्द्र : चलो।

दोनों उठकर चले जाते हैं। थके कदमों लेखक का प्रवेश

क्लान्त-क्लान्त—मैं बहुत क्लान्त हूँ।
व्यर्थ प्रश्न यों ही रहने दो।
मिटती घनी मूक छाया में
मुझे अभी केवल सोने दो।

क्या करना है बातों का अम्बार लगाकर ?
और बताओ क्या मिलना है

बीज तर्क के यूं फैलाकर ?
मैं विवेक से ऊब गया हूँ
आज बहुत ही क्लान्त हुआ हूँ।
सूने निर्जन की छाया मे
मुझे अकेला सोने दो बस।
(ज्ञात मुझे इस धरा-गर्भ में
छिपा अभी भी जाने क्या-क्या
पर मेरी सन्धान-साधना, क्लान्त हुई है।
धरती की जड़ता का बोझा।
अभी और है
पर मेरी प्रयत्न करने की
शक्ति आज तो क्लान्त हुई है।
मृत्यु-तीर पर
जीवन की आशा में बैठी
सतत प्रतीक्षा, क्लान्त हुई है।)
जाओ, अपने प्रश्न साथ ले
तर्क विवेक सभी ले जाओ।
सोने दो मुझको
छाया के घोर गभीर लोक में
मुझको सोने दो — मैं बहुत क्लान्त हूँ।

तृतीय अंक

एक टेबुल के तीनों ओर बैठे अमल, विमल और कमल ताश खेल रहे हैं। तीनों अपनी-अपनी बात कहकर पत्ते चलते और तीन पत्तों के बाद हाथ जीतकर ताश समेटते हैं।

अमल : सन् 1947 की 15 अगस्त को भारत स्वाधीन हुआ।
विमल : ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजों से हम मुक्त हुए।
कमल : अब हमें एक स्वाधीन स्वावलम्बी समाज का निर्माण करने के लिए प्रस्तुत होना है।
अमल : पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट होना ही होगा।
विमल : फ़ासिज़्म संसार को विनाश के पथ पर ले जाता है।
कमल : कम्यूनिज़्म मनुष्य के स्वातन्त्र्य-बोध को नष्ट कर देता है।
अमल : डिमोक्रेसी के द्वारा जल्दी कुछ करना सम्भव नहीं होता।
विमल : डिक्टेटरशिप हर देश, हर युग में अभिशाप रही है।
कमल : आम जनता हर व्यवस्था में दुःख पायेगी।
अमल : सारे देश में अव्यवस्था और अन्याय का साम्राज्य है।
विमल : इस सरकार के किये कुछ भी न होगा।
कमल : गद्दी पर बैठकर सब एक-से हो जाते हैं। यहाँ तो सब धान बाईस पसेरी।
अमल : राजनीति गन्दी चीज़ है।
विमल : अपनी तो नक्कारखाने में तूती की आवाज़ है। मेरा हाल क्या पूछते हो!
कमल : मैं ज़िन्दा बचूँगा तब न बाप-दादा का नाम चलेगा?
अमल : प्रमोशन नहीं हुआ।
विमल : क्वार्टर एकदम रद्दी है।

कमल : रोजगार का तार ही नहीं बैठा ।
अमल : घर में बीमार है ।
विमल : मुन्ना इम्तिहान में फेल हो गया ।
कमल : बाबूजी गुज़र गये ।
अमल : जितने सब हैं…
विमल : छिः छिः छिः ।
कमल : धत्तेरे की ।
अमल : विमल ।
विमल : कमल ।
कमल : अमल ।
अमल : विमल ।
विमल : कमल ।
कमल : अमल ।

नेपथ्य से घोषणा—एवम् इन्द्रजित् । लेखक का प्रवेश

अमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
विमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
कमल : अरे कवि, क्या हालचाल है ?
लेखक : कल इन्द्रजित् की चिट्ठी मिली ।
अमल : अच्छा क्या लिखा है ?
विमल : वह तो विलायत गया था न ?
कमल : अभी लौटा नहीं ?
लेखक : परीक्षा में पास हो गया है ।
अमल : वाह ! यह तो अच्छी खबर है ।
विमल : बस, लौटते ही नौकरी मिल जायेगी । इंजीनियरिंग लाइन बड़ी अच्छी है ।
कमल : अभी भी अपने यहाँ विदेशी डिग्री की बड़ी इज्ज़त है ।
लेखक : क्या लिखा है, सुनोगे ?
अमल : हाँ, सुनाओ ।
विमल : चिट्ठी लम्बी है ?
कमल : होने दो न ।

लेखक पत्र पढ़ना शुरू करता है । ये तीनों ताश खेलने लगते हैं । इस बार बातचीत नहीं, केवल तीन हाथ का खेल ।

लेखक : कलकत्ता-भोपाल-बम्बई-जलन्धर-मेरठ-उदयपुर-कलकत्ता-लन्दन। सारा अतीत रथ के पहिये की तरह घूमता गया है। फिर भी ठीक पहिये की तरह नहीं। हर नया चक्कर पुराने को छोड़कर अलग चक्कर बना है, यही ट्रेजेडी रही है। जानने की सबसे बड़ी ट्रेजेडी रही है। कुछ पकड़ता हूँ, फिर सब शेष हो जाता है और फेंक देता हूँ। फिर कुछ नया पकड़ता हूँ। फिर भी यह आशा किसी तरह नहीं टूटती कि कभी-न-कभी कुछ-न-कुछ असम्भव अप्रत्याशित घटकर रहेगा ही (**फिर भी हर समय यह लगता है जैसे इतना ही सब-कुछ नहीं है।**) ऐसा लगता है जैसे कभी कुछ ऐसा अवश्य घटित होगा जिसके तीव्र आलोक में अतीत का सब-कुछ धुंधला जायेगा। कैसा भोला स्वप्न है—नींद टूट जाने पर भी सपने की खुमारी और नशा नहीं जाता।

इस बीच इन्द्र आकर लेखक की बगल में खड़ा हो जाता है। अमल-विमल-कमल पूर्ववत् ताश खेले जा रहे हैं।

इन्द्र : जो कुछ मिलने लायक था, सब पा चुका हूँ। और अब यह कटु सत्य अनुभव हो रहा है कि यह सारा पाना कितना व्यर्थ रहा है। और मिलेगा और मिलने पर उसे समेटने के लिए चार हाथ निकल आयेंगे —यह आशा भी कितनी व्यर्थ है। अतीत और भविष्य आज भी रस्सी के दो छोर हैं—विपरीत हैं सो भी इसलिए कि अभी स्वप्न का अस्तित्व बचा है, नहीं तो भविष्य को मोड़-माड़कर सहज ही अतीत की गोद में डाल दिया जा सकता है। वर्तमान भी एक धूमिल अनजाने भविष्य की ओर मुँह बाये देखता अनिर्दिष्ट-सा ही न रहकर एक दिन एक सीमाबद्ध सुनिर्दिष्ट बिन्दु बन जा सकता है। कहने का मतलब —मृत्यु का वरण कर सकता है।

मानसी जरा देर पहले आ चुकी है।

मानसी : मृत्यु का वरण ?

इन्द्र : हाँ, मृत्यु का वरण। वास्तव में मृत्यु में बड़ा सुख है। न जाने कितने लोग मरकर सुख में हैं। सारे आगामी भविष्य को गत अतीत के साथ एकाकार करके परम सुखी हैं। मुझे भी तो एक-न-एक दिन इसी तरह मरना ही होगा। तो फिर अभी ही क्यों न मर जाऊँ ?

मानसी : ऐसा मत कहो। तुम जीवित रहो···

इन्द्र : जीवित रहने के लिए मनुष्य को विश्वास की जरूरत है—भगवान पर विश्वास। भाग्य पर विश्वास। काम पर विश्वास। मनुष्य पर

विश्वास। विद्रोह पर विश्वास। अपने ऊपर विश्वास···प्रेम पर विश्वास। इनमें से आज कौन-सा विश्वास मुझ में बचा है, बता सकती हो ?

मानसी : जीवन पर विश्वास है न ?

इन्द्र : जीवन। जहाँ विराट् प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते वहाँ छोटी-मोटी अर्थहीन समस्याओं में उलझे रहना। कुछेक अर्थहीन दिखावा और झूठ जिसकी कोई आवश्यकता ही नहीं थी। फिर भी करना होगा—यही जीवन है, मनुष्य-जीवन। और मैं करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों में से एक हूँ। मेरे जीवन का मिथ्या करोड़ों-करोड़ों लोगों के जीवन का मिथ्या है।

मानसी : तुम करना क्या चाहते हो ?···क्या करोगे ?

इन्द्र : क्या करूँगा ? थककर चूर होकर सो रहूँगा···या सब हँसकर उड़ा दूँगा ?···शायद हँसकर उड़ा देना ही ठीक होगा। जीवन है ही एक ऐसी हास्यकर वस्तु कि हँसी रोकने का कोई अर्थ नहीं है।

इन्द्रजित् अचानक अट्टहास कर उठता है। मानसी और लेखक अलग-अलग दिशाओं में चले जाते हैं। अमल-विमल-कमल बिना कुछ समझे-बूझे अट्टहास शुरू कर देते हैं। लेखक पुनः प्रवेश करके पाद-प्रदीप के पास आता है। दोनों हाथ उठाकर दर्शकों को रोकने की चेष्टा करता है मानो वे हँस रहे हों। अमल-विमल-कमल का प्रस्थान इनकी हँसी की आवाज धीरे-धीरे विलीन हो जाती है।

लेखक : आप लोग इस तरह हँसिए मत, मैं आपके हाथ जोड़ता हूँ, अब शान्त हो जाइए। सच, मुझसे नाटक नहीं बन पा रहा है। पर, मैं कितनी चेष्टा कर रहा हूँ, यह तो आप देख ही रहे हैं। अमल-विमल कमल का नाटक ? और इन्द्रजित् ?

मौसी का प्रवेश

मौसी : खाना नहीं खाओगे ?

लेखक : ना।

मौसी का प्रस्थान। मानसी का प्रवेश।

मानसी : खाना नहीं खाओगे ?

लेखक : (दोनों हाथों से मुँह ढककर) तुम भी ?

मानसी : नहीं, भूल हो गयी। तुम लिखोगे नहीं ?

लेखक : कैसे लिखूं ? इन्द्रजित् लौट नहीं रहा है। तीन साल में उसने मुझे तीन चिट्ठियाँ लिखी हैं, हरएक मे एक ही बात।

मानसी : क्या ?

लेखक : यही कि वह चक्कर काट रहा है, घूम रहा है, घूम रहा है पर मरता नहीं। न जाने कितने अटपटे स्वप्न दिमाग में घूमते रहते हैं, पर किसी तरह मरते नहीं। बोलो, जो जीवन को वास्तव रूप में देखता है और स्वप्न समझता है, उसे लेकर नाटक कैसे लिखा जाये ?

मानसी : उसी को लेकर तो नाटक हो सकता है।

लेखक : नहीं, नहीं। जितनी बार मैं उसे घटनाचक्र में ले आता हूँ, वह उससे बाहर छिटक पड़ता है। कहता है—यह वास्तविक घटना नहीं है। जितनी बार उससे कोई बात कहलवाना चाहता हूँ, वह उस बात की परिधि से बाहर जा खड़ा होता है। कहता है—यह वास्तविक बात नहीं है। उसने बहुत-कुछ जान लिया है, ज़रूरत से ज्यादा जान लिया है।

मानसी : फिर भी वह स्वप्न देखता है।

लेखक : एक-न-एक दिन तो स्वप्नों का अन्त होगा।

मानसी : हाँ, सो जानती हूँ।

लेखक : तब ?

मानसी : होने दो अन्त।

लेखक : उसके बाद ?

मानसी : तब तो फिर स्वप्न के तिनके के सहारे तैर नहीं सकेगा।

लेखक : तब फिर डूब जायेगा ?

मानसी : डूब जायेगा तो डूबने दो। शायद डूबकर ही वह धरती का ठोस आधार पा सकेगा। शायद वहीं से जीवन की शुरुआत हो।

लेखक : तुमने कैसे जाना ?

मानसी : मैंने ?···मैंने क्या जाना, कुछ भी नहीं। मैं तो बेवकूफ हूँ, मैं कुछ भी नहीं जानती। मैं तो केवल विश्वास करना जानती हूँ।

मानसी का प्रस्थान

लेखक : विश्वास ? पाताल का विश्वास ?

इन्द्र का प्रवेश

इन्द्र : कविता

आस्तिक की दीनता लिये मैं तैर रहा हूँ।

तृण के ऊपर डाल भार सारे जीवन का, तैर रहा हूँ ।
कोहरे की सादी साँसों ने
छिपा लिया है कूल-किनारा ।
इस प्रवास में जाना मैंने एक तथ्य है
मेघों के उस पार
स्वर्ण से मण्डित दिखता राजपाट
ओ' ताराओं के पार
डूबते-उतराते स्वर्गों की छाया
सब है मिथ्या ।
तुमसे विनय—
सान्त्वना झूठी देना छोड़ो
मन से दूर निकाल फेंक दो
आस्था औ' विश्वास युगों का ।
(स्वयं डूबकर देखो कितने गहरे में है धरती का तल ।
मानव है चल
और साथ ही क्रियाशील है ।
नहीं चूकता डूब लगाकर
जा पातालपुरी तक पहुँचा
पाने को अधिकार
डोर शासन की अपने हाथों लेने)

लेखक : इन्द्रजित् ।
इन्द्र : बोलो ।
लेखक : तुम लौट आये ?
इन्द्र : हाँ ।
लेखक : कब आये ?
इन्द्र : बहुत दिन हो गये ।
लेखक : हो कहाँ ?
इन्द्र : कलकत्ता में ।
लेखक : क्या करते हो ?
इन्द्र : नौकरी ।
लेखक : ब्याह किया !
इन्द्र : हाँ ।
लखक : मतलब, अन्त में मानसी किसी तरह ब्याह के लिए राजी हो ही गयी ।

इन्द्र : ना।
लेखक : एँ!
इन्द्र : किसी और से ब्याह किया है।
लेखक : किसी दूसरी से ?
इन्द्र : हाँ।
लेखक वह कौन है ?
इन्द्र : एक औरत।
लेखक : नाम ?
इन्द्र : मानसी।
लेखक : यह कैसे सम्भव हो सकता है ?
इन्द्र : दुनिया में ऐसे ही होता है। न जाने कितनी मानसी आती हैं और चली जाती हैं। उन्हीं में से किसी एक के साथ विवाह होता है। फिर न जाने कितनी मानसी आती हैं और चली जाती हैं। मानसी की बहन मानसी। मानसी की सहेली मानसी! मानसी की लड़की मानसी।
लेखक : वैसे ही जैसे अमल-विमल-कमल ?
इन्द्र : हाँ, वैसे ही जैसे अमल-विमल-कमल एवं इन्द्रजित्।

मानसी का प्रवेश। सिर पर आँचल है

आओ तुमसे परिचय करवा दूं। मेरी पत्नी मानसी और ये मेरे पुराने मित्र, लेखक।
लेखक : नमस्कार।
मानसी : नमस्कार। आप क्या लिखते हैं ?
लेखक : जब जो लिख जाये।
मानसी : आजकल क्या लिख रहे हैं ?
लेखक : एक नाटक लिखने की चेष्टा कर रहा हूँ।
मानसी : मुझे सुनायेंगे ?
लेखक : जरूर। पूरा हो जाने दीजिए, फिर सुनाऊँगा।
मानसी : अभी कितना बाकी है ?
लेखक : ज्यादा नहीं। बस आजकल में लिखना शुरू करूँगा।
मानसी : अभी आपने शुरू ही नहीं किया है ?
लेखक : कहाँ कर पाया ?
मानसी : आपने कहा न कि पूरा होने में अधिक बाकी नहीं है!
लेखक : इस नाटक के आरम्भ और अन्त में अधिक अन्तर नहीं है। नाटक वृत्ताकार है।

मानसी : आपकी बातें समझ में नहीं आ रही हैं।
इन्द्र : समझोगी कैसे मानसी ? बातें क्या समझने के लिए होती हैं ?
मानसी : वाह, बात समझ में आने के लिए ही तो कही जाती है !
इन्द्र : वह पहले कही जाती थी। अब केवल अभ्यासवश ही कही जाती है।
मानसी : हटाओ भी। सब फालतू की बातें हैं।
इन्द्र : फालतू की हैं, यही तो मैं भी कह रहा हूँ। वह देखो…

अमल-विमल-कमल का प्रवेश। मंच की दूसरी ओर खड़े वे बातें करते हैं।

मानसी : वे कौन हैं ?
लेखक : वे अमल—विमल—कमल हैं।
अमल : धनतन्त्र—राजतन्त्र—गणतन्त्र।
विमल : साम्राज्यवाद—नाज़ीवाद—मार्क्सवाद।
कमल : अर्थनीति—टेण्डर—स्टेटमेण्ट।
विमल : रिपोर्ट—मिनिट्स—बजट।
कमल : मीटिंग—कमेटी—कान्फरेन्स।
अमल : सभ्यता—शिक्षा—संस्कृति।
विमल : साहित्य—दर्शन—इतिहास।
कमल : ब्रह्म—निर्वाण—भूमा।
अमल : राजकपूर—माला सिन्हा—विश्वजित्।
विमल : उम्रीगर—कृष्णन्—मिलखासिंह।
कमल : हेमन्तकुमार—एस. डी. बर्मन—लता मंगेशकर।
अमल : डॉक्टर—होमियोपैथ—कविराज।
विमल : ट्राम—बस—ट्रेन।
कमल : नरम—कूड़ा—मच्छर।
अमल : बेटा—बेटी—पत्नी।
विमल : मास्टर—ड्राइवर—बावरची।
कमल : साली—भानजे—ससुर।
मानसी : वे क्या कह रहे हैं ?
इन्द्र : बातें कर रहे हैं, बातें।

अमल-विमल-कमल हाथ-पैर हिलाते निःशब्द बात करते चले जाते हैं

मानसी : क्या बातें ?
इन्द्र : मुझे नहीं पता। लेखक से पूछो।

मानसी : (लेखक से) अच्छा, इसके सिवा क्या और कोई बातें नहीं हैं ?
लेखक : लगता तो है कि हैं। जरूर हैं।

सामने आकार दर्शकों से पूछता है

इसके अलावा क्या बातें नहीं हैं ? **(दर्शक निरुत्तर)**
नहीं हैं ? **(फिर नीरव)**
तब फिर मैं किसे लेकर नाटक लिखूं ? इन सब बातों को लेकर ?
ऐसे नाटक में कौन अभिनय करेगा ? कौन देखेगा ?

इन्द्र और मानसी जाने लगते हैं।

इन्द्रजित्, जाना मत।

मानसी चली जाती है। इन्द्र लौट पड़ता है।

पहले बताकर जाओ।
इन्द्र : क्या ?
लेखक : मानसी कहाँ है ?
इन्द्र : अभी ही तो गयी है।
लेखक : यह मानसी नहीं। वह जो हज़ारीबाग में रहती थी। वह कहाँ है ?
इन्द्र : हजारीबाग में हैं।
लेखक : उसे चिट्ठी नहीं लिखते ?
इन्द्र : लिखता हूँ।
लेखक : उससे भेंट होती है ?
इन्द्र : बीच-बीच में होती है।
लेखक : कहाँ ?
इन्द्र : उसी मैदान में—घने पेड़ के नीचे।
लेखक : बातें करते हो ?
इन्द्र : हाँ, करता हूँ।
लेखक : क्या बातें करते हो ?
इन्द्र : जो सदा से करता आया हूँ—अपनी बातें, उसकी बातें।
लेखक : वे बातें भी क्या अमल-विमल-कमल की बातों की तरह ही होती हैं ?

इन्द्र निरुत्तर रहता है

बोलो। इन्द्रजित् !

इन्द्र तब भी उत्तर नहीं देता—केवल पीछे के उस मैदान में चला जाता है, उसी पेड़ के नीचे। वहाँ हज़ारीबागवाली मानसी है।

मानसी : बोलो।

इन्द्र : क्या बोलूँ ?

मानसी : वही जो कह रहे थे।

इन्द्र : क्या कह रहा था ?

मानसी : तुम्हारे घर-परिवार की बातें।

इन्द्र : अरे हाँ, मेरी स्त्री घर की देखभाल करती है। मैं नौकरी करता हूँ। मेरी स्त्री सिनेमा जाती है, मैं उसके साथ जाता हूँ। मेरी स्त्री पीहर जाती है। मैं होटल में खा लेता हूँ। वह लौटकर आ जाती है—मैं बाजार करता हूँ।

मानसी : यह सब क्या कह रहे हो ?

इन्द्र : क्यों, मेरे घर-परिवार की बातें। तुम्हीं तो सुनना चाह रही थीं।

मानसी : ये सब बातें मैं बिल्कुल नहीं सुनना चाह रही थी।

इन्द्र : तब फिर क्या सुनना चाहती हो ?

मानसी : तुम्हारी बातें।

इन्द्र : मेरी बातें ? मैं···मैं एक रेल-लाइन पकड़कर चल रहा हूँ—सीधी रेल-लाइन है। पीछे मुड़कर देखता हूँ तो दूर एक बिन्दु पर लोहे की दोनों लाइनें मिल गयी दिखती हैं। सामने देखता हूँ तो वही दूर एक बिन्दु पर दोनों लाइनें मिल गयी हैं। मैं जितना ही आगे बढ़ता जाता हूँ, वह बिन्दु उतना ही खिसकता जाता था। जो पीछे है, वही सामने भी। अतीत और भविष्य में कोई अन्तर ही नहीं, जो अतीत में है, वही भविष्य में भी।

मानसी : फिर ?

इन्द्र : सोचता था चाहे पीछे, चाहे सामने से कोई गाड़ी आयेगी।

मानसी : गाड़ी आती तो क्या करते ?

इन्द्र : कूदकर दूर हट जाता या दौड़ने लगता या कौन जाने दब ही जाता। कुछ तो होता। पर नहीं···वह कैसे होता ! मुझे मालूम हो गया है, उस लाइन पर गाड़ी नहीं चलती। इसीलिए सोचता हूँ···

चुप हो जाता है

मानसी : क्या सोचते हो ?

इन्द्र : सोचता हूँ, अब चलना बन्द कर दूँ ! चलने से कोई लाभ नहीं है। न

होगा तो उसी लाइन पर लेट रहूँगा।

मानसी : (ज़रा रुककर) ऐसा नहीं होगा इन्द्र।

इन्द्र : क्यों ?

मानसी : सामने जब पथ है तब चलना ही होगा

इन्द्र : बहुत तो चल चुका हूँ।

मानसी : और भी चलना होगा, इन्द्र।

इन्द्र : मैं थक गया हूँ।

मानसी : फिर भी चलना होगा।

इन्द्र : क्यों ? क्यों ? क्यों ? यही एक रास्ता है, मैं चला चल रहा हूँ, चला चल रहा हूँ, चला चल रहा हूँ, फिर भी निष्कृति···

मानसी : नहीं·· निष्कृति नहीं है इन्द्र।

लेखक : कविता

नहीं, नहीं है निष्कृति।
भीगा मन औ' क्षुधित दोपहर
खण्डित दिन।
निर्जन निद्राहीन रात्रि हैं।
मैं हूँ
शेष अभी हूँ–जाग्रत भी हूँ।
सब है स्मरण
अभी तो जीवन बहुत शेष है।
(रहा अभी तक जो वह अब भी···
दूर-दूर—बहुत दूर-दूर तक रहना
सब तो मेरा ही है और यही मैं।
फिर भी निष्कृति नहीं।)

क्लान्ति दूर हो शान्ति मिलेगी
इस आशा में दूर-दूर मैं उड़ता जाता
ऊपर उठते, उठकर गिरते
थके पंख पर डाले भार
(क्षण-क्षण के कण-कण हैं बिखरे
और समय की सार्वभौमता
मानो खण्डित चूर-चूर हो।)

मुझे निरन्तर घुमा रहा है

चक्का काम-काज का भारी
गुरु गम्भीर चर्र-चूं करता।
झूठ बात के खाली गुब्बारे में
भरता फूंक-फूंककर हवा। हाय, पर
फिर भी निष्कृति नहीं।
(तुमसे है अज्ञात नहीं कुछ।
तुम परिचित हो उन बातों से
सब बातों से
जो निज संग मधुर झंकृति का रव ले आतीं।
और प्रकाश, नशा ले आतीं
स्वच्छ रंगे वस्त्रों के नीचे सड़ा-गला जो उसे ढांकतीं।
तुमसे है अज्ञात नहीं यह सत्य कि)
(जो कुछ है समक्ष
वह जीर्ण पुरातन धागे में गूंथे फूलों का हार
कि जिसके फूल शीघ्र ही झर जायेंगे।)
तुमको है यह ज्ञात
कि मेरे जीवन का अवसान नहीं
मैं हूँ मृत अपने ही।
फिर भी क्यों तुम बात एक ही
बार-बार कहते कि
चलो तुम, और चलो तुम, और चलो···
क्या न मिलेगी निष्कृति अब भी ?

इन्द्र : पर क्यों ?

मानसी : पथ जब है, तब चलना ही होगा।

इन्द्र : क्यों चलना होगा ? पथ के उस पार क्या है ? मैं किसलिए चलूं ?

मानसी : सब किसलिए चलते हैं ?

इन्द्र : सब ?

सामने की ओर अमल का प्रवेश। लेखक से भेंट होती है।

लेखक : अरे अमल, कहाँ चले भाई ?

अमल : परीक्षा देने जा रहा हूँ।

लेखक : परीक्षा ? इस उम्र में ?

अमल : इन्स्टीच्यूट ऑफ़ बेटरमैनशिप की परीक्षा। पिछले साल भी दी थी पर पास नहीं हो सका। (**एक बार और चेष्टा करके देखूं।**) करेस्पाण्डेन्स कोर्स लिया है।

लेखक : यह परीक्षा देने से लाभ क्या है ?

अमल : लाभ है भाई. है। इस इन्स्टीच्यूट की एसोसियेट मेम्बरशिप मिल जाने से कोई प्रमोशन नहीं रोक सकता। (**मैनेजर की पोस्ट तक पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होगी**) चलूँ भाई, देर हो जायेगी।

अमल का प्रस्थान। विमल का प्रवेश

लेखक : अरे विमल ! कहाँ चले ?

विमल : सीमेंट के परमिट के सिलसिले में जा रहा हूँ। (**तगादा न करने से तो वहाँ फ़ाइल हिलेगी नहीं।**)

लेखक : सीमेंट क्या होगी ?

विमल : मकान बनवा रहा हूँ। (**सी. आई. टी. स्कीम में एक जमीन ली है। रिज़र्व दाम है साढ़े छः हजार और नीलाम पर चढ़कर हो गया नौ हज़ार आठ सौ पचास। क्या दाम हो गया है ज़मीन का ? अब बताओ कि मकान बनाने को पैसा कहाँ से लाऊँ ?**) गवर्नमेण्ट लोन, इन्श्योरेन्स लोन, एम्प्लाइज़ क्रेडिट लोन सब ले-दे करके भी दो मंज़िल से ज्यादा नहीं बना पा रहा हूँ।

लेखक : तो फिर अभी बनवाया ही क्यों ?

विमल : और क्या करता बोलो ? (**आजकल रुपये की कोई कीमत है ?**) पर मकान हो तो बुढ़ौती में कम-से-कम रहने का ठौर-ठिकाना तो रहता है ! (**फिर बाल-बच्चों की बात भी तो सोचनी पड़ती है।**) चलूँ भाई, देर हो रही है।

विमल का प्रस्थान। कमल का प्रवेश

लेखक : अरे कमल ! कहाँ चले भाई ?

कमल : ज़रा श्यामल के ऑफ़िस जा रहा हूँ। उसने किसी एक फ़ाइनेंसियर का जुगाड़ किया है। देखूँ, यदि समझा सका तो...

लेखक : क्या समझाओगे ?

कमल : एक बड़े अच्छे बिज़नेस की स्कीम है—फ़ुल प्रूफ़ स्कीम है। (**इम्पोर्ट लायसेंस मिल जायेगा, एसेम्बलिंग में कोई परेशानी नहीं होगी। बड़ा अच्छा मार्केट है। बाज़ार में माल पहुँच ही नहीं पायेगा —सब बुक्ड इन एडवान्स**) बस खाली पूँजी के लिए ही रुकी है। (**हमने और श्यामल ने मिलकर उधार का इन्तजाम किया है. उसमें पूरा नहीं पड़ रहा है**) फ़िफ्टीन परसेण्ट सूद पर भी रुपया नहीं मिल रहा है।

लेखक : तो इस समय यह रोजगार ही मत उठाओ ।

कमल : न करूँ तो खाऊँगा क्या ? नौकरी तो ऐसी ही है। भगवान की दया से छः बच्चे हैं। (लड़की की टायफायड में एक हजार रुपये गल गये। बिचले को स्कूल में प्रमोशन नहीं मिला—एक साल की फीस का नुकसान हो गया। इस तरह कब तक चलेगा ?) चलूँ, देर हो रही है।

कमल और लेखक दोनों का प्रस्थान

इन्द्र : और सब। यही और सब हैं। यही अमल-विमल-कमल हैं।

मानसी : फिर भी तो वे चल रहे हैं।

इन्द्र : वे सुखी हैं, मानसी। उनके सामने कुछ है—लक्ष्य है, आशा है स्वप्न है।

मानसी : तुम्हारे पास नहीं है ?

इन्द्र : ना, कुछ नहीं है।

मानसी : कभी था भी नहीं ?

इन्द्र : था, कभी था क्यों नहीं ! मैं खुद था, मैंने मान लिया था कि मुझे कुछ करना है। क्या यह मैं नहीं जानता था पर···पर कुछ विराट् कुछ विशाल।···मैं स्वप्न देखा करता था मानो एक ज्वलन्त उल्का की तरह मैं दिशाओं को भेदकर ऊपर आया हूँ—आकाश के इस कोने से उस कोने तक मैं बस ऊपर ही उठता जा रहा हूँ···तब तक जब तक कि उल्का की अग्नि जलकर निश्शेष न हो जाये। और आकाश में क्षण-भर के लिए आँखों को झुलसा देनेवाली एक ज्वाला मात्र शेष रह जाती है।

मानसी : जलकर भस्म हो गये ?

इन्द्र : कहाँ मानसी ! प्रकाश ही नहीं हुआ। आकाश में ज्वाला ही नहीं रही। मैं दिगन्त भेदकर आकाश में ऊपर उठ ही नहीं पाया।

मानसी : क्यों ?

इन्द्र : मुझमें वह क्षमता नहीं है, कभी भी नहीं थी। मैंने केवल क्षमता का स्वप्न देखा। मैं एक अत्यन्त साधारण व्यक्ति हूँ। जब तक इसे स्वीकार नहीं कर पाया तब तक स्वप्न में था। आज स्वीकार करता हूँ।

मानसी : इन्द्रजित्।

इन्द्र : ना-ना मानसी। मुझे इन्द्रजित् मत कहो, मैं इन्द्रजित् नहीं हूँ। मैं निर्मल हूँ। अमल, विमल, कमल और निर्मल। मैं अमल, विमल, कमल और निर्मल हूँ।

बोलते-बोलते व्याकुल-सा इन्द्र सामने आ जाता है। लेखक आकर पीछे खड़ा होता है। मानसी बैठी रहती है।

लेखक : इन्द्रजित्।

इन्द्र : आप शायद भूल कर रहे हैं। मेरा नाम निर्मल कुमार राय है।

लेखक : मुझे पहचान नहीं रहे हो, इन्द्रजित् ?

इन्द्र : कौन ? तुम ? लेखक ?

लेखक : मैं अपना नाटक पूरा नहीं कर पा रहा हूँ, इन्द्र !

इन्द्र : पूरा करके क्या होगा ? उसका अन्त नहीं है। उसका आदि-अन्त सब एक ही है।

लेखक : फिर भी लिखना तो होगा।

इन्द्र : तुम्हें लिखना है, तुम लिखो। मेरा कुछ भी नहीं है—मैं निर्मल हूँ।

लेखक : तुम्हारा कुछ नहीं ? प्रमोशन, मकान, बिजनेस स्कीम कुछ भी नहीं ? फिर तुम निर्मल कैसे होगे ?

इन्द्र : पर···पर मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूँ।

लेखक : फिर भी तुम निर्मल नहीं हो। मैं भी साधारण व्यक्ति हूँ, फिर भी निर्मल नहीं हूँ। हम और तुम निर्मल नहीं हो सकते।

इन्द्र : तब फिर हम लोग किसके सहारे जियेंगे ?

लेखक : पथ के। हम लोगों के लिए केवल पथ है, हम लोग चलेंगे। लिखने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है, फिर भी लिखूंगा। बोलने के लिए तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है, फिर भी बोलोगे। मानसी के पास जीने के लिए कोई आधार नहीं है, फिर भी वह जिन्दा रहेगी। हम लोगों के लिए पथ है, हम लोग चलेंगे।

इन्द्र : देवराज जूपिटर के अभिशाप से सिसिफस की प्रेतात्मा एक बड़ा भारी पत्थर ठेलते-ठेलते पहाड़ की चोटी तक ले जाती है, पर चोटी पर पहुँचते ही तुरन्त पत्थर नीचे लुढ़क जाता है। वह फिर ठेल-ठेल ले जाता है, पत्थर फिर गिर पड़ता है।

लेखक : हम लोग भी अभिशप्त सिसिफस की प्रेतात्मा हैं। हम भी जानते हैं कि वह पत्थर लुढ़क जायेगा। जब ठेल-ठेलकर ऊपर ले जाते हैं तब जानते हैं कि इस मेहनत का कोई अर्थ नहीं है, पहाड़ की उस चोटी का भी कोई मतलब नहीं है।

इन्द्र : इतना सब जानते हुए भी ठेलना होगा ?

लेखक : हाँ, सब-कुछ जानते हुए भी ठेलना होगा। हमें कोई आशा नहीं है क्योंकि भविष्य के बारे में हम जानते हैं। हम लोगों का अतीत और

भविष्य एकाकार हो गया है। हम जान चुके हैं कि जो हमारे पीछे था, वही हमारे सामने भी है।

इन्द्र : फिर भी ज़िन्दा रहना होगा ?

लेखक : हाँ, फिर भी ज़िन्दा रहना होगा। फिर भी चलते जाना होगा। हम लोगों के लिए तीर्थ नहीं है, केवल तीर्थयात्रा।

मानसी आकर लेखक और इन्द्रजित् के बीच में खड़ी हो गयी है। तीनों की दृष्टि सामने है, तनिक ऊपर। लगता है मानो प्रेक्षागृह की दीवार पारकर, हवा और आकाश का क्षेत्र पार करके कहीं बहुत दूर चली गयी है वहाँ, जहाँ पथ की दोनों रेखाएँ एक बिन्दु पर मिल गयी हैं। चारों ओर अन्धकार में एक प्रकाश-पुंज उन्हें आलोकित किये है। दूर से स्वर सुनाती पड़ता है।

इसीलिए तो इस पथ का मैं
अन्त नहीं पाता हूँ।
नहीं कहीं आश्वास कि
यात्रा के पूरी होने पर कोई
देवलोक सम्मुख होगा
या कि स्नेह-स्पर्श से अपने
पथ-श्रम कोई दूर करेगा।
इसीलिए यह यात्रा अब है
अर्थहीन
उद्देश्यहीन-सी।
तो भी सोच करूँ क्यों ?
हो, ऐसी ही होनी है तो ?

इच्छा केवल व्यर्थ प्रश्न सब पड़े रहें
उस अतल गर्त में।
शोक सभी मैं जाऊँ भूल।
जीवन के उस स्वर्ण-प्रात में
मुक्त-हृदय निर्द्वन्द्व भाव से
दीक्षा ली थी पदयात्रा की
सतत तीर्थयात्रा करने की।

जीवन की सन्ध्या में पहुँचा

मन मेरा यह भूल न जाये
दीक्षा के उस मूल मन्त्र को—
तीर्थ नहीं, है केवल यात्रा
लक्ष्य नहीं, है केवल पथ ही
इसी तीर्थपथ पर है चलना
इष्ट यही, गन्तव्य यही है।

राजकमल प्रकाशन

'राजकमल' की स्थापना 1947 के पूर्वार्ध में हुई थी। छत्तीस वर्षों की इस लम्बी अवधि में राजकमल ने एक जीवन्त प्रकाशन संस्थान की छवि अर्जित की है।

हिन्दी के प्रायः सभी प्रतिष्ठित लेखकों की अधिसंख्य रचनाएँ प्रकाशित करने के साथ-साथ 'राजकमल' ने नयी प्रतिभाओं को भी पाठकों तक पहुँचाने के दायित्व का निर्वाह सफलतापूर्वक किया है।

'राजकमल' के प्रकाशनों पर अब तक ग्यारह साहित्य अकादमी पुरस्कार, दो भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार और चार सोवियतलैण्ड नेहरू पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकारों तथा अन्य संस्थाओं द्वारा लगभग तीन दर्जन पुस्तकें पुरस्कृत हो चुकी हैं।

प्रकाशन के क्षेत्र में राजकमल का एक विशिष्ट योगदान है वर्चस्वी लेखकों की ग्रन्थावलियों का प्रकाशन। 1979 में 'सुमित्रानन्दन पन्त ग्रन्थावली' (7 खण्ड) के प्रकाशन के साथ यह कार्य शुरू हुआ, और उसके बाद क्रमशः 'मुक्तिबोध रचनावली' (6 खण्ड), 'हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली' (11 खण्ड), 'निराला रचनावली' (8 खण्ड) और 'बच्चन रचनावली' (9 खण्ड) का प्रकाशन हो चुका है। इस समय और भी कई महत्वपूर्ण ग्रन्थावलियाँ प्रकाशनाधीन हैं।

'राजकमल' ने 1951 में साहित्यिक समीक्षा की त्रैमासिकी 'आलोचना' का प्रकाशन शुरू किया, जो अब तक अविच्छिन्न रूप से प्रकाशित हो रही है। समय-समय पर इसे हिन्दी के मूर्धन्य विद्वानों का सम्पादन-सहयोग मिला, और पिछले लगभग डेढ़ दशक से कृती समालोचक डा. नामवर सिंह के सम्पादन में यह पत्रिका हिन्दी आलोचना के नये मानदण्ड स्थापित कर रही है।

श्रेष्ठ साहित्यिक पुस्तकें बहुत कम मूल्य पर दूर-दराज गाँवों-कस्बों में फैले पाठकों तक पहुँचाने के लिए 'राजकमल' ने 1974 में 'आलोचना पुस्तक परिवार' का गठन किया, जिसके हजारों सदस्यों ने इस आम धारणा को गलत सिद्ध किया है कि हिन्दी में खरीदकर पुस्तकें पढ़नेवाले गम्भीर पाठक नहीं हैं।

राजकमल पेपरबैक्स

'राजकमल पेपरबैक्स' की प्रकाशन-प्रेरणा हमारा यह अनुभव है कि हिन्दी में कमी स्तरीय पाठकों की उतनी नहीं, जितनी कि उनकी आर्थिक क्षमता के दायरे में आनेवाली स्तरीय पुस्तकों की है। 'राजकमल पेपरबैक्स' के माध्यम से इसी कमी को दूर करने की कोशिश की गयी है।

'राजकमल पेपरबैक्स' का उद्देश्य स्वस्थ साहित्य को बृहत्तर पाठक-समुदाय तक पहुँचाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'राजकमल पेपरबैक्स' में पुस्तकों का मूल्य उनके सजिल्द संस्करणों की अपेक्षा 60 से 65 प्रतिशत कम रखा गया है। 'राजकमल पेपरबैक्स' में हिन्दी की उत्कृष्ट और बहुचर्चित कृतियों के साथ-साथ अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं की भी विशिष्ट कृतियाँ प्रकाशित होंगी।

'राजकमल पेपरबैक्स' की पाठ्य-सामग्री ही नहीं, उनका रूपाकार भी कलात्मक और मनभावन रखा गया है। इन पुस्तकों के आवरण पर सुविख्यात चित्रकारों की कलाकृतियाँ दी जा रही हैं, और यह केवल हिन्दी में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय प्रकाशन में एक नयी पहल है। 'राजकमल' की यह पहल सृजनात्मक कलाओं की मूलभूत एकता को प्रदर्शित करने और उनके परस्पर सहयोग को बढ़ावा देनेवाली है।

इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि 'राजकमल पेपरबैक्स' में प्रकाशित पुस्तकों का पाठ प्रामाणिक और शुद्ध हो। साथ ही, इन पुस्तको की पाठ्य-सामग्री अपने मूल रूप में, अविकल, होगी, उसे किसी भी प्रकार संक्षिप्त नहीं किया जायेगा।

राजकमल पेपरबैक्स

पहले सैट में प्रकाशित पुस्तक

रागदरबारी / श्रीलाल शुक्ल / 18.00
वे दिन / निर्मल वर्मा / 11.00
मित्रो मरजानी / कृष्णा सोबती / 6.00
कुरु-कुरु स्वाहा / मनोहर श्याम जोशी / 13.00
सुहाग के नूपुर / अमृतलाल नागर / 12.00
बसन्ती / भीष्म साहनी / 10.00
दूसरी परम्परा की खोज / नामवरसिंह / 10.00
अजनबी / आल्बेयर कामू / 6.00
प्रतिनिधि कहानियाँ / भगवतीचरण वर्मा / 10·00
प्रतिनिधि व्यंग्य / हरिशंकर परसाई / 10.00
प्रतिनिधि कविताएँ / अमृता प्रीतम / 10.00

दूसरे सैट में प्रकाशित पुस्तकें

अनामदास का पोथा / हजारीप्रसाद द्विवेदी / 12.00
आधा गाँव / राही मासूम रज़ा / 17.00
लोग / गिरिराज किशोर / 11.00
पगला घोड़ा एवम् इन्द्रजित / बादल सरकार / 10.00
प्रतिनिधि कहानियाँ / फणीश्वरनाथ रेणु / 10.00
प्रतिनिधि कविताएँ / सर्वेश्वरदयाल सक्सेना / 10.00
प्रतिनिधि कविताएँ / फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ / 10.00

आलोचना पुस्तक परिवार

श्रेष्ठ तथा सुरुचिपूर्ण पुस्तकें
घर बैठे मँगाने की बहुचर्चित योजना

10 वर्ष पूर्व
अपने शुभारम्भ से आज तक
हजारों पाठकों ने इसकी सदस्यता ग्रहण करके
राजकमल से प्रकाशित सुप्रतिष्ठ लेखकों की
चर्चित पुस्तकों के
असंक्षिप्त पेपरबैक संस्करण
सजिल्द संस्करण के ठीक आधे दाम पर
घर बैठे प्राप्त किये हैं।

राजकमल पेपरबैक्स

स्तरीय साहित्यिक पुस्तकों को
आम पाठक तक ले जानेवाली एक और
महत्तम योजना

हिन्दी तथा विभिन्न भारतीय भाषा-साहित्य के साथ
अन्यान्य विश्व-भाषाओं में प्रकाशित
श्रेष्ठतम साहित्य के
कलात्मक प्रकाशन की अभिनव शुरुआत

विख्यात चित्रकारों की
बहुरंगी कलाकृतियों से सज्जित आवरण,
उच्चस्तरीय छपाई और जिल्दबन्दी
सजिल्द संस्करणों की अपेक्षा
60 प्रतिशत से भी कम मूल्य, और
6 पुस्तकों के संयुक्त आदेश पर डाकखर्च की छूट

राजकमल पेपरबेक्स

बादल सरकार

पगला घोड़ा / एवम् इन्द्रजित

इस पुस्तक में बांग्ला के ख्यातिप्राप्त नाटककार बादल सरकार के दो महत्त्वपूर्ण नाटक संगृहीत हैं—'पगला घोड़ा' और 'एवम् इन्द्रजित'। 'पगला घोड़ा' एक 'मिष्टि प्रेमेर गल्प' अर्थात मधुर प्रेमकथा है। श्मशान की पृष्ठभूमि में चार व्यक्तियों की बात-चीत और हठात् उसमें जलती चिता से उठकर आयी एक लड़की का प्रवेश, जो अपने अशरीरी अस्तित्व को छोड़ मूर्त हो उठती है और चारों व्यक्तियों को कुरेद-कुरेदकर उन क्षणों को पुनः जीने के लिए प्रेरित करती है, जो उनके अपने-अपने प्रेम-प्रसंगों में महत्त्वपूर्ण रहे हैं। अन्ततः वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि जीवित रहने से ही सब कुछ सम्भव है। 'एवम् इन्द्रजित' युवा वर्ग की महत्त्वाकांक्षा, परवर्ती कुण्ठा और तज्जनित निराशा का यथार्थ चित्रण करता है, लेकिन महत्त्वपूर्ण है इसकी यह स्थापना कि मृत्यु का वरण किसी भी समस्या का समाधान नहीं। मूल्यवत्ता की दृष्टि से वस्तुतः दोनों ही नाटक जीवन के प्रति आस्था जगाते हैं। प्रतिभा अग्रवाल द्वारा अनूदित ये नाटक हिन्दी-रंगमंच पर बेहद सराहे गये हैं।

राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली पटना

15.00